

पंजाबी के चुने हुए हास्य-व्यंग्य

संपादक
सुरजीत

रचनाकार प्रकाशन, दिल्ली

© सुरक्षित

प्रकाशक : रचनाकार प्रकाशन

१५८६/१ई, नवीन शाहदरा

दिल्ली - ११००३२

प्रथम संस्करण : १९८६

मूल्य : तीस रुपये

मुद्रक : चौपड़ा प्रिंटर्स,

नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

PUNJABI KE CHUNE HUYE HASYA-VYANGYA

(Selected Satires of Panjabi Literature) ed. by Surjeet

दो शब्द

जैसे हास्य-व्यंग्य के बिना जीवन नीरस, उकताहट-भरा और अरुचि-कर हो जाता है, वैसे ही हास्य के बिना साहित्य अपूर्ण, नीरस और गैर-दिलचस्प हो जाता है। अतः हास्य-व्यंग्य भी साहित्य का अभिन्न अंग माना जाने लगा है।

पंजाबी साहित्य में हास्य-व्यंग्य बीसवीं शताब्दी की उत्पत्ति है, जिसकी नींव एस० एस० चरणसिंह शहीद ने रखी। उन्होंने १९२३ में 'मौजी' साप्ताहिक शुरू किया जिसमें एक काल्पनिक पात्र 'बाबा बरियाम' का सृजन किया जो कि इतना प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुआ कि लोग 'मौजी' पत्रिका की प्रतीक्षा करने लगे। ईशर सिंह ईशर भी 'भाइया' पात्र द्वारा काफी समय तक पंजाबी कविता के स्टेज पर सामाजिक कुरीतियों पर कटाक्ष करता रहा था। फिर हरिन्दरसिंह सूर ने अपने हल्के-फुल्के लेखों द्वारा पंजाबी हास्य-व्यंग्य की बुनियाद रखी।

पंजाबी हास्य-व्यंग्य के दूसरे दौर में स्व० कन्हैयालाल कपूर, डा० गुरनाम सिंह तीर, प्यारासिंह दाता और स्व० सूबा सिंह ने अपना योगदान दिया। कन्हैयालाल कपूर मूल रूप से उर्दू के लेखक थे, लेकिन उन्होंने शुरू में पंजाबी में भी लिखा और दो पुस्तकें भी छपीं। प्यारा सिंह दाता ने हास्य-व्यंग्य की कई पुस्तकें लिखीं। उन्होंने 'लक्ष्मी' और 'सैलानी' जैसे अमर पात्र पंजाबी साहित्य को दिये।

तीसरे दौर के लेखक हैं अनंत सिंह काबली, गुरदेव सिंह मान, दलीप सिंह जुनेजा, दलीप सिंह भूपाल और जे० एल० नन्दा—जिन्होंने पंजाबी हास्य-व्यंग्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

इसके अतिरिक्त जगदीश प्रसाद कौशिक, निरंजन शर्मा सेखा, होरजंग जांगली, के० एल० गर्ग, स्व०, (प्रो०) बलवीर सिंह ने भी अपनी-अपनी रचनाओं से पंजाबी साहित्य को समृद्ध किया ।

भूषण, सी० आर० मोदगिल, हरवंत सिंह बिरक, तस्तसिंह कोमल, शमशेर सिंह साज, सुरजीत सिंह माटिया आदि कई नए लेखक इस क्षेत्र में आ रहे हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक में यथासंभव पंजाबी से लगभग सभी आधुनिक हास्य-व्यंग्य की रचनाएं हिन्दी के पाठकों के समक्ष पेश करने का प्रयास किया गया है । विश्वास है यह प्रयास पसंद किया जाएगा ।

— सुरजीत

अनुक्रम

जिन्दा शहीद —	प्यारा सिंह दाता	७
चन्नो का काका	डा० गुरनाम सिंह तीर	१६
ये काम टालने वाले	सूबा सिंह	२२
मेहरबां कैसे-कैसे	केरवण जांणली	२८
बिवाह के ढोल सुहाने	अनंत सिंह कावली	३४
बड़ी शाटं है	प्रो० बलबीर सिंह	४०
साया	रामलाल नामवी	४६
देशी टट्टू खुरासानी दुलत्ती	के० एल० गर्ग	५३
मिनी एज	जे० एल० नंदा	५७
हमें हमारे मेहमानों से बचाएं	जगदीश प्रसाद कौशिक	६५
मेरी तोबा, मैं कवि-सम्मेलन		
नहीं कराऊंगा	दलीप सिंह भूपाल	७२
निमंत्रण-पत्र मिलने के बाद	दलीप सिंह जुनेजा	७६
पुस्तक-विमोचन समारोह	जसवंत सिंह कैलवी	८२
हम भूमिका लिखवाने गए	निरंजन शर्मा सेखा	८७
मेरी पंजाबी फिल्म	जगदीश सिंह	९१
साले, डरपोक !	एन० के० राही किरोजपुरी	९७
सम्पादक की कुर्सी पर	तस्तसिंह कोमल	१०१
जरा बचके हमदर्द ससाहकारों से	कृसदीप सिंह चेतनपुरी	१०५
वफादारी	बलबीर सिंह रैना	१०६
सीगों वाला गधा	डा. मोनोजीत	११२
कैनवस का भूत	डा० नरेश	१२०
मां ! पुलिस वाले के घर मत ब्याहना	नूर संतोखपुरी	१२३
केलक-परिचय		१२४

जिंदा शहीद

प्यारा सिंह दाता



१९२६-३० की बात है। भगत सिंह की शहादत के बाद कांग्रेस आंदोलन जब पूर्ण जीवन पर था, तब पंजाब के गांव-गांव और शहर-शहर में राजनीतिक सम्मेलन बड़े जोर-शोर से हो रहे थे। उन दिनों एक शानदार सम्मेलन लेखक की जन्मभूमि—सम्यद कसरा, जिला रावलपिंडी में हुआ, जिसकी अध्यक्षता का सौभाग्य आपके इस सेवक को प्राप्त हुआ। रेलवे स्टेशन से लेकर शहर तक सारा मार्ग झंडे, झंडियों और दरवाजों से ऐसे सुसज्जित किया गया था जैसे किसी महान व्यक्ति के दर्शन होने हो। फिर सारा इलाका ही इस सम्मेलन के जुलूस के समय उमड़ आया था। यहाँ सम्मेलन करने का विशेष कारण यह था कि प्रबंधक इस सोयी हुई घरती के बेटों को अकशोरकर जगाना चाहते थे और केवल इसी इलाके में से ५०० युवकों का जत्था खोदे के नमक पहाड़ों से मुक्त नमक प्राप्त करने के लिए शांतिमय मोर्चे पर भेजना चाहते थे। उन्होंने बड़े-बड़े आदमकद पोस्टरों से सारे इलाके में इस सम्मेलन के संबंध में इतना प्रचार किया था कि जनता के उफनते सागर का कोई ठिकाना ही नहीं था।

इस सम्मेलन की अध्यक्षता का सम्मान लेखक को कैसे प्राप्त हुआ, यह बताने के लिए कुछ पहली घटनाओं का वर्णन करना जरूरी है।

खालसा हाईस्कूल, सम्यद से दसवी पास करने के बाद मैं कई साल आबारागढ़ी में रावलपिंडी, लाहौर और अमृतसर की गलियां नापता रहा। कोई काम-काज नहीं, कोई मीकरी नहीं, और रहने का कोई ठिकाना नहीं। एक दिन अचानक गुरु रामदास अस्पताल, अमृतसर में

काम कर रहे मित्र तख्त सिंह से मुलाकात हो गई। जब उसने मेरी बेकारी की ओर ध्यान दिया तो कहने लगा, "तू पढ़ा-लिखा और सूझवान नौजवान है, फिर तू क्रांति अखबार का सम्पादक क्यों नहीं बन जाता?"

मैं कितनी ही देर तक तख्त सिंह की ओर आश्चर्य से देखता रहा। फिर बोला, "तख्त सिंह क्यों गरीब आदमी से मखौल करता है। कहां क्रांति अखबार की एडीटरी और कहां मेरे जैसा आबारागद, बेकार और टुटपूँजिया, जिसने कभी चार अक्षर लिखने तो एक ओर रहे, अखबार भी कम ही पढ़ा है।"

"भई तू बात नहीं समझता, प्यारा सिंहा!" तख्त सिंह मेरे निकट हो रहस्यपूर्ण स्वर में बोला, "बात यह है कि क्रांति अखबार में लिखने वाले बंदे और होते हैं। उनका नाम अखबार में छपा नहीं जाता और जिन एडीटरी का नाम अखबार में छपता रहा है, उनके लिए काला अक्षर भेस बराबर था। यह तो सब कुछ सरकार को धोखा देने के लिए होता है। इसीलिए तो मैं तुमसे कहता हूँ कि तू अखबार का एडीटर बन जा। करना-कराना कुछ नहीं। हा, तेरे रासन-यानी और कपड़े-लत्ते का प्रबंध दफ्तर की ओर से हो जाया करेगा।"

मुझे अब तख्त सिंह की बातें कुछ-कुछ समझ में आ रही थीं। मैंने दिल में सोचा, 'हमें तो सारा दिन आबारागदी ही करनी है, और अगर इस हालत में एडीटरी का सम्मान और खाने-पीने के अलावा जेबखर्च भी मिलता रहे तो हर्ज ही क्या है।' सो मैंने तख्त सिंह को 'हां' कर दी, और वह उसी क्षण मुझे क्रांति अखबार के पुराने तार घर वाले दफ्तर में ले गया। वहां उसने अपने परिचित एक बंगाली मुक से मेरे बारे में बात की। अस्तु, उसी समय एक फार्म पर मुझसे हस्ताक्षर करवा मुझे यह नौकरी दे दी गयी।

इसके बाद मेरा काम केवल दिन में एक-दो बार दफ्तर जाना होता था और बस। अखबार पहले ही चल रहा था और अब भी। हाँ, मुझे यह पता चल गया था कि भूतपूर्व सम्पादक के जेल चले जाने के कारण ही मुझे यह नौकरी मिली है, जिसमें सेवा के साथ-साथ मेवा भी मिलना जरूरी था।

उन दिनों 'क्रांति' में बड़े जोरदार लेख छपते थे। जब मैंने यह सेवा स्वीकार कर ली, तब से पहले से भी अधिक जोशीले लेख मेरे नाम से छपने लगे। मेरे नाम के साथ 'जिदा शहीद' का खिताब अखबार वालों ने स्वयं ही जड़ दिया और मैं अपने हलके में उस दिन से इसी उपनाम से प्रसिद्ध हो गया।

कभी-कभी मुझे यह चिंता लग जाती थी कि कहीं भूतपूर्व इन्दी सम्पादकों की तरह मैं भी न घर लिया जाऊँ, क्योंकि वास्तविक लेखक तो 'अंडरग्राउंड' रहते थे। उनका काम केवल लिखना होता था और जो सम्पादक के नाम में कंद होते थे, उनको तो लिखना आता ही नहीं था। पर तख्त सिंह सदा मुझे सांत्वना ही देता रहा कि ऐसा समय कभी नहीं आने दिया जायेगा और इस प्रकार पूरे दो महीने बीत गये।

उन दिनों मैं, तख्त सिंह और हमारे दफ्तर का सारा कुआंरा स्टाफ खोती अहाते में एक होटल से खाना खाते थे। एक दिन दो ही घास मैंने मुंह में डाले थे कि सामने दरवाजे में से दो पुलिस के सिपाही और एक थानेदार आते दृष्टिगोचर हुए। तख्त सिंह ने उनको देखते ही मुझे कहा, "शहीद! इस खिड़की में से पिछली तरफ छलांग मारकर भाग जा, यह एडीटर की गिरफ्तारी के लिए ही आये लगते हैं।"

मैंने हाथ में एक घास लिए और दूसरा मुंह में डाले ही होटल की पिछली खिड़की से छलांग मार दी। वह खिड़की बाहर की सड़क से काफी ऊंची थी। सो गिरता-पड़ता अपने कपड़े झाड़ता हुआ उठकर भागने ही लगा था कि पास खड़े दो यमदूत जैसे सिपाहियों ने मुझे काबू कर लिया।

सिपाहियों ने होटल के भीतर गये थानेदार को आवाज दी। सिपाहियों का शोर सुनकर थानेदार के साथ ही हमारे स्टाफ वाले और आस-पास के लोग आ इकट्ठे हुए और एक जुलूस की शक्ल में पुलिस मुझे कोतवाली ले गई। रास्ते में मुझे लोगों ने फूलमालाएं पहनाईं और फोटो लिए। वही फोटो दूसरे दिन के अखबार ने बड़ी-बड़ी सुखियों के साथ छपी, "क्रांति अखबार के पन्द्रहवें सम्पादक को एक होटल में से सैकड़ों की

मि. मे. स. ल. की फौज ने घेरा डालकर बड़ी कठिनता से गिरफ्तार किया।

आखिर मुकदमा चला और मुझे छह महीने की कैद हुई। अब पता चला कि पिछले छह महीनों की हरामखोरी के बाद 'सेवा का मेवा' मिलना भी जरूरी था। मैं जितने समय जेल में रहा, बाहर अखबारों में मेरी बहादुरी के कल्पित कारनामों से पृष्ठ पर पृष्ठकासे होते रहे और जब मैं जेल से रिहा हुआ तो सचमुच मैं एक नेता बन चुका था। इतनी शोहरत देखकर किसका मन नाच नहीं उठता, पर मैंने तो कुर्बानी भी की थी।

मेरी रिहाई के समाचार से देश-भर में खुशियां मनाई गईं, कई जगह-जुलूस निकाले गए और प्रशंसा के रूप में अभिनंदन और पुरस्कार पेश किए गए।

यह बात यहां तक ही सीमित नहीं थी। मेरी जन्मभूमि में तो मेरी बहुत बड़े नेताओं की तरह मान्यता होने लगी थी। उन लोगों ने उन दिनों एक राजनीतिक सम्मेलन की घोषणा की। मेरे गांव के लोगों को गर्व था कि उनका एक होनहार नौनिहाल इतने बड़े पद पर पहुंच गया है। अखबार की एडीटरी ही उन लोगों की नजरों में बहुत बड़ी बात थी, पर उसके साथ ही नेतागिरी तो सोने पर सुहागे का काम कर रही थी। वह गर्व मैं फूले नहीं समाते थे—गिरफ्तारी और रिहाई के समय की खींची फोटो मेरे वतन के घर-घर में फ्रेमों जड़ी हुई सटक रही थी। मैं उनके लिए एक हीरो था और मेरी पूजा कौम के महान् नेताओं के समान हो रही थी, पर मुझे इन बातों की बिल्कुल खबर नहीं थी कि सचमुच अपने इलाके में भी मैं इतना बड़ा कौमी नेता बन चुका हूं।

सम्मेलन की तिथि निश्चित हो जाने के बाद मुझे पोठोहार (रावल-पिंडी, जेहलम का इलाका) के देशभक्त नेताओं की ओर से निमंत्रण-पत्र भेजा गया, "श्रीमान् जी, निम्नलिखित तिथियों पर हो रही पोठोहार पोसीटिवल कानफ्रेंस का उद्घाटन करने की कृपा करें। यहां की जनता आपके दर्शनों के लिए व्याकुल हो रही है, सो दर्शन देने के लिए अवश्य पहुंचें।"

इसके माथ ही लिखा हुआ था, "कानफ्रेंस का अध्यक्षीय भाषण भी

आपको ही करना होगा। जनता इस नाजुक समय में आप से निरन्तर आशा कर रही है।
बहादुर कौमी लीडर का नेतृत्व चाहती है।”

इस निमंत्रण-पत्र ने मेरी आंखें खोल दी। अब सचमुच मैं कौम का लीडर था। लीडरी का नशा मुझ पर ऐसा सवार हुआ कि उतरा ही नहीं, और आखिरतार द्वारा सूचना भेज दी कि अमुक गाड़ी से सम्मेलन में पहुंच रहा हूं।

मेरी अध्यक्षता की सूचना क्षण-भर में सारे इलाके में फैल गई और सब घर-दारी इस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा में थे कि कल एक महान् नेता के दर्शन उन्हें प्राप्त होंगे।

सम्मेलन में सप्ताह-भर रह गया, तो मुझे ख्याल आया कि अध्यक्ष पद का भाषण भी तैयार करना है, तो उससे संबंधित ‘क्रांति’ की पिछली सब फाइलों को देख डाला और आखिर भाषण के लिए नोट तैयार कर लिए।

सबसे पहले मैं जनता को इन शब्दों से सम्बोधन करूंगा, “मेरे प्यारे हम-बहनो! मुसलमानो, हिंदू और सिख भाइयो और बहनो...!”

इसके बाद मैं जनता के सामने सरकार के अत्याचारों का एक ऐसा नक्शा खींचकर बताऊंगा कि किस प्रकार वह हमारे भाइयों पर जुल्म कर रही है और गोरे हजारों मीलों से यहां आकर हमारा खून चूस रहे हैं।

फिर एक उदाहरण दूंगा, “अगर हम सब हिंदुस्तानी मिल जाएं और इकट्ठे होकर एक जगह पानी पीकर कोसने के बजाय कुल्हा भी कर दें तो विदेशी गोरे उसके बहाव में बहकर इंग्लैंड पहुंच जाएंगे।” इसके बाद कुछ क्षण धामोश रहना पड़ेगा, क्योंकि उपर्युक्त उदाहरण से जय-जयकारों की वह प्रतिध्वनि उठेगी कि आसमान कांप उठेगा।

इसके उपरान्त मैं बड़े जोश से कहूंगा, “कौम को अब ५०० नौजवानों की जरूरत है, जिनका नेतृत्व करने के लिए मैं तैयार हूं। अगर कौम की खातिर मेरा सिर भी चला जाए, तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा।”

मैं इन टिप्पणियों को पूरा एक हफ्ता घोंटा लगाता रहा। किसी समय भाषण के भाग आगे-पीछे हो जाते तो उनको भी ठीक कर लेता। कितनी

बार एकात में और कितनी बार अपने राजनीतिक गुरु तख्त सिंह के सामने अपने जवानी रटे भाषण का उच्चारण किया, और जब तख्त सिंह की ओर से भी स्वीकृति मिल गयी तो हृदय प्रसन्न हो गया ।

निश्चित तारीख पर तख्त सिंह को साथ लेकर मैं अमृतसर से सय्यद को रवाना हुआ । मदरा स्टेशन से गाड़ी बदलनी पड़ती थी । जब गाड़ी बदलने के लिए हम दोनों पहली गाड़ी से उतरे तो कई मनचले नौजवान वहां भी हाजिर थे । उन्होंने पुष्पमालाओं में हमें लाद दिया और आखिर हम सय्यद वाली गाड़ी पर बैठकर सय्यद स्टेशन पर जा उतरे । वहां पर हजारों लोगों का हुजूम खड़ा नारे लगा रहा था, 'कौमी लीडर जिदाबाद', 'जिदा शहीद जिदाबाद', 'पोलीटिकल कानफेंस जिदाबाद ।'

मैं पहले ही पुष्पमालाओं से लदा हुआ था, पर अब नयी पहनाई पुष्पमालाओं से मेरी गर्दन टूटने को आ गई । मैं पहनी मालाएं उतारकर तख्तसिंह को पकड़ाता जाता था और जनता नई मालाओं से पुनः मुझे लादे जा रही थी ।

स्टेशन से ही एक खुसो कार में हमें बैठाया गया । तख्त सिंह को लोगों ने धकेलकर परे कर दिया था । उसको बड़ी मुश्किल से ढूढ़कर मैंने कार में अपने साथ बैठाया । सारा रास्ता झंझियों और दरवाजों से सुसज्जित था । पहले दरवाजे पर मेरी आदमकद तस्वीर लटक रही थी और उस पर 'जिदा शहीद गेट' लिखा हुआ था । अगले दरवाजे कई अन्य नेताओं के नाम से बनाए गए थे, पर हर गेट पर आदमकद तस्वीर मेरी ही लगी हुई थी । हजारों का हुजूम नारे लगाता मुझे पंढाल की ओर ले गया ।

सम्मेलन के पंढाल में बहुत ठाट-बाट था । काफी ऊंची और सजी हुई स्टेज पर इलाके के प्रसिद्ध चौधरियों के बीच मुझे बैठाया गया । चारों ओर मोटो लगे हुए थे और उनमें से अधिकांश इस प्रकार के थे :

'जिदा शहीद की कुर्बानियों पर हम गर्व करते हैं ।'

'जिदा शहीद ने अंग्रेजों को नाकों घने चवा दिये ।'

'जिदा शहीद अमर रहे ।'

सबसे पहले स्टेज सेफ्रेटरी उठे । उन्होंने गरजते हुए 'जिदा शहीद'

की कुर्वानियों का वर्णन किया कि कैसे जिंदा शहीद जी कई साल अंग्रेजी सरकार को परेशान करते रहे, पर उसके हाथ न आए। आखिर जब पुलिस थक-हारकर बैठ गयी तो बहादुर शूर-वीरों की भांति इन्होंने अपने-आप को पेश कर दिया।

इस पर लोगों ने खूब तालियां बजाईं और बहुत देर तक 'जिंदा शहीद अमर रहे' के नारे लगाती रही। स्टेज सेक्रेटरी ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "पोठोहार की धरती को कम गर्व नहीं कि उसने जिंदा शहीद जैसे बहादुर देशभक्त पैदा किए हैं जिनके सामने अंग्रेजों की जेलें तो क्या, उनकी फांसियों का भी कोई मूल्य नहीं।"

'फांसी' शब्द पर सेक्रेटरी ने तनिक अधिक जोर दिया और इधर मेरा कलेजा धड़कने लगा। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा जैसे स्टेज के सामने फांसी गाढ़ी हुई है और यह सब लोग मेरे फांसी पर चढ़ने का तमाशा देखने आए हों।

और उधर सेक्रेटरी कह रहा था, "अब आप उस त्याग के पुंज और देश के महान् नेता के विचार सुनेंगे, तो आपको पता चलेगा कि उनमें अंग्रेजों के विरुद्ध कितनी जलन, कितनी घृणा है..."

इसके बाद फिर 'जिंदा शहीद जिंदाबाद' के नारे लगने लगे। इसके साथ ही 'सत श्री अकाल', 'अल्हा हो अकबर' और 'बंदे मातरम्' के आकाश-भेदी जयजयकार भी गूंज उठे।

इस समय मेरा सिर चकरा रहा था। मेरे सामने फांसी की रस्सी लटकती नजर आ रही थी। जैसे ही पुष्पमालाओं से लदे जिंदा शहीद जी को सेक्रेटरी ने बांह से पकड़कर भाषण के लिए खड़ा किया, तो ऐसे लगा जैसे वह शहीद जी को फांसी की ओर धकेल रहा हो। कभी तो पडाल मेरे गिर्द चक्कर खाता जान पड़े और कभी मैं खुद उसके गिर्द चक्कर खाता जान पड़ूं और फांसी की लटकती रस्सी तो आंखों के सामने से ओझस ही नहीं होती थी।

मेरे पास बैठे वृक्ष सिंह ने मेरा पैर दबाया, जिससे मुझे महसूस हुआ कि अब बोलना चाहिए, पर बोला क्या जाए, यह भूल गया। आंखें बंद करके दिमाग पर जोर दिया तो याद आया कि हिंदू, सिख और मुसल-

मानों को एका करने के लिए जोर देना है। सो, बड़ी मुश्किल से घामे से मुंह से निकला :

“मुसलमानो !”

श्रोतागण आश्चर्य-चकित थे कि आज हमारे लीडर को क्या हो गया है ? तख्त सिंह ने नीचे से पुनः पैर दबाया, तो मैं हवास खो बैठा। सारा जोर लगाकर कहा :

“भाइयो, आप सब मुसलमान हैं !”

सट मुझे अपनी गलती का अनुभव हुआ कि इस प्रकार नहीं कहना चाहिए सो फौरन संशोधन करते हुए ऊंचे स्वर में चीखकर कहा, “मुसलमानो, आप सब हिंदू हो, सब सिख हैं !”

इसके बाद मुझे याद आ गया कि नोट लिखे कागज की सहायता से क्यों न भाषण आगे चलाया जाए ? जेब में हाथ डाला तो वह कागज गायब था। फिर सोचा क्यों न गोरे वाली बात सुनाऊं। अब अपनी सारी बिखरी वृत्तियों को एकत्र करके मैंने कहना शुरू किया, “अगर मैं अंग्रेजों के साथ मिलकर कुत्ता कर दूँ तो आप सब उसमे बहकर विलायत पहुंच जाएं।”

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं क्या बोल रहा हूँ, पर इतना पता था कि मैं बोलता जा रहा हूँ।

अब तक लोगों के धैर्य का प्याला पूर्ण रूपेण भर चुका था। उन्होंने कहना शुरू कर दिया; “बेवकूफ...पागल...अंग्रेजों का पट्टा !”

और इधर तख्त सिंह निरंतर मेरा पैर दबाए जा रहा था और मैं गरजते हुए बोलता जा रहा था :

“अंग्रेज हमारे मित्र हैं। मैंने उनकी जेलें देखी हैं। हम सब इकट्ठे होकर फांसी पर चढ़ सकते हैं।”

‘फांसी’ शब्द मुंह से निकलने की देर थी कि फांसी की रस्सी पुनः सामने सटवती हुई नजर आई जो कुछ सणों के लिए आंखों से लोप हो गई थी।

मैं चीखकर बोला, “वे लोग पागल हैं जो मुझे फांसी पर सटवाना चाहते हैं। मैं मूर्ख नहीं, मैं पागल नहीं, मैं जिंदा शहीद हूँ...”

मैं...मैं।"

और जबान हकला गई। तब्त सिंह लगातार मेरा पैर दबा रहा था।
ऐन उस समय श्रोतागण में से किसी ने मुझे एक छोटा-सा पत्थर दे मारा।
बस, फिर क्या था, पहल करने की देरी थी कि रुका बांध टूट गया। टूटे
जूते, कागज के टुकड़े, मिट्टी और पत्थर के टुकड़े, आदि स्टेज पर बरसने
लगे। जो 'जिंदा शहीद' कुछ क्षण पहले जनता की आंखों का तारा था,
उसके मुंह, सर, कान और नाक से खून बह रहा था। मुझे उस समय
कुछ सूझ नहीं रहा था। उसी क्षण किसी अदृश्य शक्ति ने मेरे कान में
फूँका, 'शहीद, भाग जा।' बस फिर क्या था, कदम भर स्टेज की पिछली
तरफ की कनात से छलांग लगाई और सीधा बाहर। आगे पुलिस पंढाल
को चारों ओर से घेरे खड़ी थी, और उसको सम्मेलन खत्म होते ही मुझे
गिरफ्तार कर लेना था, पर मेरी यह हालत देख पुलिस ने रास्ता दे
दिया। मेरे पीछे जनता का उफनता समुद्र था। लोग गालियाँ देते और
लानतें उछालते मेरे पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। पुलिस उनको रोक रही थी
कि एक बेगुनाह आदमी को क्यों तंग करते हैं। मैं हाँफता हुआ सीधा
स्टेशन पहुँचा। मेरी खुशकिस्मती कि वह गाड़ी जिस पर मैं जलूस
निकलवाने आया था, अपने अंतिम स्टेशन 'भौण' से वापस लौटकर मंदरा
की ओर जाने को तैयार खड़ी थी। मैं उसमें बैठ गया और मेरे बैठते ही
गाड़ी सीटी बजाकर चल पड़ी।

चन्नो का काका

डा० गुरनाम सिंह तोर



बहुत वर्षों के बाद अपनी ससुराल गया। घर का मुझे पता था। इसलिए अधिक पूछताछ करने की जरूरत नहीं पड़ी। मुझसे कुछ दिन पहले मेरा लड़का अपनी ननिहाल रहकर गया था। वह भी दो-चार दिन के लिए गया और फिर लौट आया। अपनी ननिहाल के चौबारे में बिस्तर बिछाकर पढ़ता रहा। किसी को मिला नहीं। गांव में न सिनेमा-घर था, न कोई थियेटर, न कोई बलब और न कोई लाइब्रेरी थी। इसलिए काका (लड़का) यह बहाना करके आ गया कि मैं फिर जल्दी ही आऊंगा। मेरी परीक्षा है। इसलिए जाना जरूरी है। मुझे इन बातों का कुछ पता न था।

जब मैं ससुराल पहुंचा, तब मेरी सास की जेठानी माई भागां मुझे ससुराल की हवेली के दरवाजे पर मिली। उसे तो ख़ाब खढ़ गया। मैंने उसको माया देका, तो उसने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए सारे मुहल्ले में यह कहते हुए मुनादी कर दी, “सो री, चन्नो का काका आ गया है।” मेरी बीबी को मेरे ससुराल वाले ‘चन्नो’ कहकर बुलाते थे। मैं बड़ा हैरान हुआ कि मैं तो चन्नो का घरवाला हूं, चन्नो का काका नहीं हूं, फिर इतनी गमतफहमी कैसे हो गई?

माई ने मुझे स्पष्टीकरण करने ही नहीं दिया। वह शोर मचाए जा रही थी, “सामो री दूध का छन्ना, दो री पंजीरी की कटोरी, बनाओ री कड़ाहप्रसाद, काका मुश्किल से आया है। यह निर्मोही बीस दिन हुए नारा सगाकर चला गया था। मैं कहती रह गई, काका परीक्षा की तैयारी यहीं रहकर कर ले। अच्छा पाने-पीने को। घर में भैंस, घोड़े और बैल हैं।

इनके होते हुए आंगन भरा-भरा सगता है। तेरा यहां दिस क्यों नहीं लगेगा, पर यह शहरी हो गए हैं शहरी ! जो लोग शहर में जा बसें, चाहे कुछ खाने को मिले, न मिले, लेकिन रहेंगे वहीं। इस दुष्ट को मैं कह रही थी—तू न जा, न जा, हमारा दिस नहीं लगेगा, पर इसने एक न मानी। झट तैयार हो गया और पट से चला गया। हम देखते ही रह गए। वह दिन जाए और यह दिन आए, प्रतीक्षा करते-करते आंखें थक गईं। और बता काका, तेरी मम्मी तो ठीक थी न ? तुझे कितने दिन की छुट्टी दी ? अपने बाप को भी कहना था कि वह भी मिल जाए। इतना निर्मोही क्यों हो गया है ! हाईकोर्ट का वकील क्या बना है, बस सगे-सबंधी ही छोड़ दिए। वहां जाओ, तब भी खुलकर बात नहीं करता। हर समय मुकदमों की पढ़ी रहती है। इतना धन क्या करेगा ?”

मैं सोच रहा था कि बूढ़ी को कहूं तो क्या कहूं, पर वह मुझे बोलने का अवसर ही नहीं दे रही थी। जब मैं कुछ कहना चाहता, वह झट कोई नयी बात शुरू कर देती। हमारे बाप-बेटों की शक्स काफी मिलती-जुलती थी। दाढ़ियां भी एक जैसी थी। बेहरा-मोहरा भी एक-सा था। कद-काठ भी एक-सा था। पढ़ने के लिए ऐनक हम दोनों ही लगाते थे। इसलिए जो हमें कभी नहीं मिला था, या नहीं जानता था, उसको यह अवसर गलत-फहमी हो जाती थी कि हम छोटे-बड़े भाई हैं, पर माई भागा ने तो सारे रेकार्ड ही तोड़ दिए थे। वह मुझे ‘बन्नो का काका’ बनाए बैठी थी। उसको देख-सुनकर कुछ और लोग भी आ गए और मेरे गिर्द इकट्ठे हो गए। मैंने उनको भी ‘सत थी अकाल’ कहा, पर उनमें से भी किसी ने यह न पहचाना कि मैं बन्नो का काका हूं कि घरवाला। मैं पानी-पानी हो रहा था, पर माई भागा बराबर कहे जा रही थी, “दोहते बड़े सापरवाह होते हैं। कोई कितना तड़पे, कितना कुछ करे, इनको कुछ याद नहीं रहता।”

फिर मेरी ओर देखकर कहने लगी, “काका, तेरे बाप को तो देखे हुए एक मुद्दत ही हो गई है। चार फेरे तेने के लिए आया था, और चला गया। इससे ज्यादा उसने इस गांव के साथ कोई रिश्ता नहीं रखा। लोगों के भी जामाता आते हैं। मिलकर आते हैं, पर तेरा बाप तो बेहद ही

निर्मोही हो गया है।”

मैं बार-बार सोच रहा था कि उनकी गलतफहमी कैसे दूर करूं, पर ससुराल वाले अपनी रट लगाए जा रहे थे। माई फिर कहने लगी, “चन्नो हर साल तीज पर आती है। हमारी आखों में ठंड पड़ जाती है। हमारी चन्नो तो सचमुच चन्नो (चांद) है। पूर्णमासी वाले दिन जन्मी थी। इसीलिए चौदहवीं के चांद से चार रत्ती ऊपर है। उसके रूप की दूर-दूर तक घूमे पड़ी हुई थी। राजे-महाराजे उसका रिश्ता मांगते थे, पर जहाँ संयोग होते हैं, वहाँ ही विवाह होता है। तेरे बाप के साथ तो उसका संबंध परलोक ही से लिखा हुआ था। हम उसको और कहां ब्याह सकते थे। चन्नो गांव से दसवीं पास करके गई थी। शहर जाकर दस जमातें और पड़ गई। अब सुना है, प्रोफेसरनी लगी हुई है। तेरे जितने लड़के-लड़कियों को पढ़ाती है।”

मैंने कुछ हिम्मत कर कहा, “मां जी, वह तो मुझे भी पढ़ाती है।”

माई मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहने लगी, “पुत्तर! तू भाग्यवान् है। जितना उससे पढ़ लेगा, उतना ही सुखी रहेगा। चन्नो तो उड़ते पंछियों को पढ़ा सकती है। तू तो फिर सुख से उसका पुत्तर है।”

‘पुत्तर’ वाली बात बड़ी चुभती थी। मैंने दो-तीन बार होले-होले कहा, “मां जी, मैं चन्नो का काका नहीं हूँ।” पर मेरी बात किसी ने न सुनी। वह कहती जा रही थी, “काका, जैसी चन्नो, वैसा ही साहब, जैसा साहब सिंह और चन्नो, वैसा ही तू। हमने तो कई बार लिखा है, भई, हमें सारे परिवार की तस्वीर खिंचवाकर ही भेज दे। पर हमारी इतनी बात भी किसी ने नहीं मानी।”

मैं चुपकर के सुनता गया और वह कहती गई, “चन्नो की तो कभी न कभी कुशलता की चिट्ठी आ जाती है, पर तेरे बाप ने कभी कुछ नहीं लिखा। लोगों के भी दामाद हैं, पर इतनी सापरवाही कोई नहीं करता।”

तीन-चार और धरों की लड़कियां वहाँ आ गईं और उनके पूछने से पहले ही माई भागा ने ‘चन्नो के काका’ के बारे में ऐसे ढंग से जान-पहचान करानी शुरू की कि किसी को शक ही न रहने दिया कि मैं चन्नो का काका हूँ कि काके का बाप। अन्य बूढ़ियों ने भी उसी स्वर में नोंक-

झोंक शुरू कर दी। एक कहने लगी, “हमें तो यह काका चन्नो और उसके बाप से भी अधिक अच्छा लगता है, जो कम से कम हमें मिलने तो आया है। शहर जाकर चन्नो मेम साहब बन गई है और घर वाला तो पहले ही अपने-आप को साहब कहलवाता था।”

दूसरी कहने लगी, “चन्नो के तो साहब का नाम ही साहब सिंह है। यों तो यह काके जैसा ही सिख है।”

तीसरी कहने लगी, “अरी, सिख कौन-से साहब नहीं होते। असली साहब तो होते ही वह हैं, जिनके पास चार एकड़ जमीन हो। केवल टोप पहनकर साहब थोड़े ही बन जाते हैं।”

चौथी बोली, “अब तो बहन, साहब ही वही बनता है जिसका न आगा, न पीछा, न घर, न घाट, न जमीन, न जायदाद, बस बोर्दे ली, झंडी वाली कार में बैठे और साहब बन गए। न जात, न पांत, न ऊंच, न नीच, न आगा, न पीछा, न घर, न घाट बस तिरे साहब के साहब।”

मैं कौओं के घेरे में उल्लू की तरह कभी किसी की ओर देखूं, और कभी किसी की ओर, पर मुझे कुछ न सूझे कि मैं कहूं, तो क्या कहूं, बल्कि उनकी बातें सुन-सुनकर मेरा मन पक्का होता जा रहा था कि मेरी कुशलता थप रहने में ही है।

चर्चा चलती गई। चन्नो के काके और उसके बाप को छोड़कर बुढ़ियों ने मिट्टी के तेल, डीजल, ट्रंकटों, ट्रूबबेसों, बिजली और पानी की बातें शुरू कर दी। धीरे-धीरे उनकी बातों गुस्से का रूप धारण करती गई। अंत में एक ने यह कह दिया, “एक दिन ऐसा जरूर आएगा, जब गांव के लोग शहरियों से खाए-पिए का हिसाब मांगेंगे।”

मैंने उनका गुस्सा ठंडा करने के खयाल से कहा, “शहरियों के खाए-पिए का जब हिमाब होगा, तब देखा जाएगा, इस समय तो मुझे कुछ खाने-पीने को दो।”

मेरी बात सुनकर सभी खिलखिलाकर हंस पड़ीं और एक बूढ़ी उठती हुई कहने लगी, “अरी, केवल गपौड़ ही हांके जाओगी, काके को कुछ खिलाओ-पिलाओ भी।”

“मां बलिहारी!” भाई भागां ने कहा, “पुत्तर, मैंने तो पहले ही तेरे

लिए दूध का छन्ना मंगवाया हुआ है। वह भी लो अब। तेरे मामे आ जाते हैं। फिर तेरे लिए कुक्कड़ (मुर्ग) काटेंगे। साग चूल्हे पर रखा हुआ है। और जो-जो कुछ तू कहेगा, तैयार करवा दोगे। ईश्वर की कृपा से तेरी मामी बहुत सुंदर कड़ाह-प्रसाद (हलुआ) बनाती है।”

दूध का छन्ना आया। मैं वह सेवन कर गया। मेरे गिर्द घेरा कुछ डीला हुआ। दो-तीन बुढ़ियां उठकर अपने-अपने घर चली गईं। मेरा जी चाहे कि मैं सारा भेद खोल दू कि इतने में चन्नो के दोनों भाई खेत से लौट आए। इससे पहले कि मैं उनको ‘सत श्री अकाल’ कहता, माई भार्गा ऊंची आवाज से कहने लगी, “अरे जै सिंह, वे तेजिया, इधर आओ। देखो, चन्नो का काका आया है।”

वह भागकर मेरी ओर आए और मेरे सिर पर हाथ फेरकर कुछ ठिठक गए। जय सिंह कहने लगा, “ताई, तू क्या कह रही थी, चन्नो का काका आया है? वह कहाँ है?”

बूढ़ी जोश में आकर कहने लगी, “अरे, तुम्हें रतींधी हो गई है। तुम्हें दिखाई नहीं देता। अभी कौन-सी इतनी रात पड़ गई है। यह मेरे पास चन्नो का काका नहीं बैठा हुआ, तो यह और कौन है?”

वे दोनों हस पड़े और जय सिंह कहने लगा, “ताई, यह चन्नो का काका नहीं, चन्नो के काके का बाप है। यह साहब सिंह है। काका तो बीस दिन हुए, तब आया था।”

“हाय, मैं मर जाऊँ, मैं तो इसको चन्नो का काका ही समझती रही। यह भी तब से मजा लिए जाता है। कुछ मुँह से तो बोलता ही नहीं।”

मैंने कहा, “मा जी, मैंने कई बार बोलने का प्रयत्न किया, पर आपने मुझे बीमा एजेंट और विरोधी वकील की तरह बोलने का मौका ही कहा दिया।”

माई अपने-आप पर हंसती हुई कहने लगी, “बाहे गुरु की तो काका, तुम्हारे पर बहुत कृपा है। जैसा पुत्तर, वैसा बाप, और दोनों से ज्यादा सुंदर हमारी चन्नो।”

मैंने फिर हसकर कहा, “मां जी, यह सब आपकी चन्नो की मेहर-न है, मही तो इतने सुंदर लड़के-लड़कियां कहा से होने थे! सारे

“बच्चे देखने में उसके वहन-भाई लगते हैं।”

“ठीक है, पुत्तर, ठीक है!” भाई ने समझौता करने वालों की तरह कहा, “बच्चे तो सारे ही सुंदर हैं, पर काका करमजीत और तू तो देखने में सगे भाई लगते हो।”

भाई की ओर से तो छुटकारा मिल गया, पर मुहल्ले की नौजवान लड़कियां, जो ज्यादातर मेरी सालिया लगती थीं, उनको जब पता चला कि मैं चन्नो का काका नहीं, घरवाला हूं, तो उन्होंने आकर मेरा घिराव कर लिया। एक कहने लगी, “पल्ले न कार, न मोटर, आ गया है वसों पर चढ़कर! ऐसा दामाद हमारे गांव वालों ने क्या करना था!”

दूसरी बोली, “यह अपनी अटैंची-केस सिर पर रखे आ रहा था, मुझे तो लगता है, चंडीगढ़ के स्टेशन पर कुली लगा हुआ है।”

तीसरी कहने लगी, “कुली हो चाहे, बकीस, हमने तो सड़्डू खाने हैं। कितने सालों के बाद हमारा जीजा आया है, और अरी, भाया भी कुछ भेस बदलकर!”

मैंने कहा, “मैं तो कोई भेस बदलकर नहीं आया। जैसा था, वैसा ही आ गया हूं, पर तुम लोगों की नजरों में कुछ फर्क आ गया है।”

भाई भागां ने धीरे से कहा, “अरे भाई, फर्क और गलतफहमी कैसे दूर हो। चन्नो पहले से ज्यादा मुटियार हो गई है और तू ईश्वर की दया से काके जैसा लगता है।”

एक अन्य साली, जो बहुत तेज-तरार थी, कहने लगी, “यह शहरिये कहां बूढ़े होते हैं। इनको तो खाने को गोभी मिलती है, गोभी। हमारे लिए तो रेवड़ियां भी लेकर नहीं आया।”

मुझे घिरा देखकर छोटा साला मेरी मदद को आया, और कहने लगा, “सड़कियो, जीजा तुम्हारे लिए बहुत कुछ लाया है। मैंने देखा है, दो घैले मिठाई और फलों के भरे हुए हैं। जरा आराम करने दो। फिर तुम्हें बांटेंगे।”

एक और ने तीखी नजरें फेंकते हुए कहा, “जब तक बाजार में दाढ़ियां रंगने की शीशियां मिलती रहेंगी, बाप-बेटों की गलतफहमी टूटने नहीं देनी।” और फिर सारी लड़कियां खिलखिताकर हंस पड़ीं।

ये काम ढालने वाले

सूबा सिंह



वास्ता पड़ने पर इन्सान का पता चलता है। हाथ चाहे कोमल हों, लेकिन वही जान सकता है, जिसको सने ! कमजोर कर्मचारियों के साथ भी वास्ता पड़े तो एक बार आदमी के कपाट खुल जाते हैं। जहां आजकल आम लोगों का नारा आराम हराम है, वहां ये बड़े गबं से छाती निकालकर कहेंगे कि हमे आराम नहीं काम हराम है।

मेरा दुर्भाग्य कह लें या सौभाग्य, मुझे ऐसे कलाकारों के साथ हर रोज वास्ता पड़ता है। जैसे किसी ने किसी का सिर लकड़ी की डाल या भारी परपर से फोड़ दिया, वैसे ही इन कलाकार कामचोर कर्मचारियों को काम बताकर ख्वाब होना है। ये सौ-सौ बहाने, हजार-हजार टाल-मटोल के पैतरे करेंगे और मजाल है तिनका तोड़कर भी दोहरा कर जाएं।

ऐसे महाशयों में मेरा एक साथी मनोरंजनलाल है। वह दफ्तर में घुसते ही टोपी उतारकर मेज पर फेंकेगा, दीवार वाले आईने के सामने कभी दायी बाँछें पीछे खीचेगा, कभी बायीं। उसके बाद दोनों हाथों की उँगलियों से नाक के गिर्द आंखों के नीचे पड़ी हुई लकीरों को मसलेगा। फिर बांहें ऊपर उठाकर अंगड़ाई लेगा, जम्हाई लेगा और फिर हमारी ओर मुंह फेरकर कहेगा, आज तो काम करने का मूड नहीं। सारी रात धारिश होती रही। कभी चारपाई बाहर बिछाएं, कभी अन्दर। न नौद आई, न चैन आया, और अब सिर भारी-भारी लगता है। काम का मूड कहा से बने ?”

यह घोषणा करने के बाद वह चपरासी पर गजरेगा, “पानी का

एक गिलास लाकर रख । मेज साफ नहीं की । कुर्सी पर बालिष्ठ भर दिया । कमीज का कफ देख, कितना मैला हो गया । क्या दफ्तर है ! कितनी गर्द ! दो दिन कमीज पहनो, कीचड़ जैसी हो जाएगी । काम का मूढ फिर कैसे बने !”

अभी चपरासी पानी को नहीं गया होगा कि वह आवाज देगा, “यह पकड़ आठ आने । चाय का पूरा आधा सेट ले आ । चार प्याले निकल आए । कोई आ ही जाता है ।” इस पर वह पूछेगा, “पहले चाय लाऊँ या पानी ?” मनोरंजनसास यह सुनते ही पटाके की तरह फट जाएंगे, “दिमाग न घाट ! जो चीज मिले, ले आ ! पानी भी पिएंगे और चाय भी । काम-काज किसी ने क्या करना है ! काम का कोई मूल्य नहीं । यहाँ तो चपरासी भी साट साहब हैं । इनका मुनहरी असूल यह है कि हुक्म टालना नहीं, काम करना नहीं । काम का कोई मूल्य नहीं । काम करके बहुतैरा देख लिया । काम करने वालों ने कौन-सी हवेलियाँ बना ली हैं और हमारी रह गई है !” वह हम सबसे अपनी बात का हुंकारा बुँदेगा ।

चाय आ जाने के बाद लगभग आधा घंटा उसका चाय के बारे में भाषण जारी रहेगा, “चाय लोगों को न बनानी आती है न पीनी । एक गिलास पानी का और पाव-भर पत्ती । पी लो तो रस्सी डालकर खींचने पर भी पलकें नीचे न आएँ । फिर चुस्किमाँ भरेंगे । शोर मचाएंगे । किसी को खाक पता नहीं कि चाय कैसे पी जाती है । दूसरे देशों में चाय बनाना, और मेज पर रखने और पीने के सलीके के बारे में तीन-तीन साल का कोर्स होता है स्कूलों में !”

चाय खत्म करने के बाद वह मेज पर पड़े हुए कागजों को इधर-उधर उलट-पुलटकर बड़बड़ाने लग जाएंगे, “मार डाला है काम ने ! कागजों के पुलन्दों के पुलन्दे इधर फेंकते जाएंगे । नौकरी कँसी कर ली, बेगार में पकड़े गए हैं । यह केस फिर मेरे माथे पर दे मारा है । बीस बार वापस की है । फिर यहाँ पर भेज दी !” और यह कहकर ठहाका मारकर हँस पड़ेगा । और फिर वह हसरत-भरे लहजे में अपने काम के अनुभव यों पेश करेगा, “पार्टिशन से पहले जिला कचहरी में असला क्लर्क

सगे थे। हर ऐरा-नैरा लाइसेंस मांगता था। भीड़ सगी रहती। 'बाबू जी, बाबू जी' की दुहाई होती रहती। हम हर एक को खेस की तरह झाड़-झाड़कर फेंकते थे। उन्होंने पैसे भी देने, याचनाएं भी करनी। हमें मालूम था, यह लोग फसने पर ही मार खाते हैं। जो किसी ने देना, ले लेना। साल-भर में सभी कसरें पूरी हो जातीं। पर काम भी करते थे जान मारकर ! कमाई हो तो काम मला कोई कैसे न करेगा ? यहां भी अमर कमाई वाली सीट मिले तो फिर देखें हमारी फुर्ती !"

इस तरह डेढ़ बज जाएगा। आधा घंटा छुट्टी और दो बजे वापसी। आते ही चपरासी को हुबम मिलेगा, "जा नीचे से कार्ड ले आ। पाच लिफाफे भी। मेरे मित्र की जमनी से चिट्ठी आई थी। यहां फुरसत ही नहीं मिलती क्या करें ! और क्या ना करें। जवाब किस समय लिखें।" और इसके बाद वह किसी अंग्रेज अफसर की क्या शुरू कर देगा :

"मुकाबला नहीं अंग्रेज अफसरों का। कप्तान स्कालर के साथ काम करने का जो मजा था, वह फिर नहीं मिला ! बड़ा रंजीला आदमी था। जब मौसम थोड़ा-सा सुहावना होता, उसने फौरन आवाज देनी, 'मनोरंजन लाल, इधर आओ ! फाइलों में मत फंसो, मर जाएगा। देखो ! हवा कैसी ठण्डी माफिक चलता है।' आम मंगवा लेने और बढ़िया सिगरेटें पेश करनी और मेमों के किस्से शुरू कर सारी यकावट उतार देनी ! पर अब तो काम से दुरा हाल है !"

इस वास्तान-गोई में पाच बज आते हैं। वह टोपी सिर पर रखकर कमरे से बाहर निकल जाएगा।

उसका मेज भजे के सिर की तरह साफ-चिकना, पर उसके नीचे रद्दी की टोकरी ठसाठस भरी होती है।

एक और काम टालने में उस्ताद के साथ मेरा वास्ता पड़ा था पिछले साल ! मोटी-मोटी आंखें ! भयानक चेहरा ! हट्टा-कट्टा शरीर होने के कारण उसकी हर बात की हिमायत में सिर हिलाना पड़ता था। वह कमरे में कंधे से ट्रांजिस्टर लटकाए हुए आता।

कुर्सी पर बैठकर, उसने सामने पड़ी फाइलों को जोर-जोर से मेज पर मारकर झाड़ना और फिर इशारा करना :

“हर फाइल पर ‘तुरन्त’ का पुर्जा लगाकर भेजते जाएंगे। कोई पूछे, क्या बाढ़ आ गई ! छत गिर गई या सड़ाई शुरू हो गई ! आखिर हम मशीन तो नहीं, छह महीने अपने पास वह कागज दबाए रखेंगे, फिर हमारी ओर भेज देंगे। किसी दिन फाइलों के नीचे प्राण निकल जाएंगे, फिर हमें मरे हुए चूहे की तरह पूँछ पकड़कर बाहर फेंक देंगे ! क्यों बाबू खुशहाल बन्द जी, ठीक कहा है न मैंने ?”

इसके बाद वह क्रिकेट की बात शुरू कर देता, “कप्तान पटौदी ने शानदार सेंचुरी मारी। कामेंटरी सुनकर आनन्द आ गया है।” हेड क्लर्क ने यह सुनकर थोड़ी-सी नजरें तस्त्र करनीं तो उसने पैतरा बदलना, “रात तो खुशहाल बन्द जी, भाग्य बलवान था, तो बच गए। भगवान ने रख लिया, नहीं तो हमने कहा था आना था आज !”

“क्यों, क्या हुआ ?”

“होना क्या था ! सर्कस देखने गए थे। शेर काबू से बाहर हो गया। पिंजरे में से निकलते ही वह दहाड़ा और रिंग मास्टर की गर्दन को पकड़ लिया। भगदड़ मच गई। घन्चों की चीखें, औरतों का शोर, भागते हुए रास्ता न मिले ! शेर भी भला मानुस निकला, बस रिंग मास्टर के चिमड़े करके, खुद ही पिंजरे में जा घुसा !”

“चलो शेर तो पिंजरे में चला गया, अब हम भी काम की ओर जाएं !” हेड क्लर्क मनसाराम ने कहना।

“बाह जी बाह ! काम को छोड़ो और कोई काम की बात करो बाबू जी ! तरक्की लेनी है तो खुशामद सीखो। क्या सेना है काम करके ! पहले क्या कमा लिया है आपने ! सेहत आपकी नहीं। चुपड़ी रोटी आपको नहीं पचती। आंखें आपकी खराब हो गई हैं। मुझे तो आप पर तरस है। कागजों में डाक्टर ने कल ही कहा था, खुनाक (टांसिल) के कीटाणु हैं, खुनाक के ! यह सब खुनाक से मरेंगे काम करने के शौकीन !”

यह कहकर उसने मूँछों को ताव देना और फिर बड़ी विनम्रता से कहना, “बाबू जी, पान खाएंगे ! आपकी कसम मोठ वाला जामू बड़े स्वादिष्ट पान लगाता है। खाएंगे तो हमें याद करेंगे। मजाल क्या, कतया कम-ज्यादा लग जाए। बाबू जी, ठाकुरदास होता था न ! एफ०सी० ग्राज वाला !

वह दिन में डेढ़ साँ पान खा जाता था। हमने क्या खाने हैं !” पान मुह में फंसाकर उसने ट्रांजिस्टर का घोड़ा मरोड़ देना। गाना शुरू हो जाना—
 “इश्क इश्क... हाँ इश्क इश्क...” और उसने ‘हाल’ खेलने वालों की तरह खुशी में और मस्ती में झूमने लगना।

उसके बाद दफ्तर की जल्दी की चिट्ठियों पर ‘कागज नहीं मिले’ लिख-लिखकर चपरासी को आवाज लगायी, “सन्तू ! इनको उठा ले जा और डाक वाले को थकड़ा दे और पाय का सेट ले आ ! प्यालियाँ अफसरों वाली लाना। आज मैं सुपरिटेण्डेंट साहब को अपने हाथ से चाय बनाकर पिमाऊंगा !”

फिर भला उसको काम करने को कौन कह सकता था ?

सुपरिटेण्डेंट साहब ने इस पर धी की तरह पिघल जाना।

ऐसी साभदतमदियाँ अब कहाँ। जब मैं हेडक्वार्टर होता था डिप्टी कमिश्नर के दफ्तर में, तो जिन बलकों को काम का शौक होता, वह लाख खुशामदें करते, कपड़े धोते, बच्चों को छिलाते, बिलमें भरते, ब्याह-शादी के समय उनके मेहमान सभालते, लोग भी बहुत आदर करते। हमने कभी कोई चीज आटा, धी, सब्जियाँ कभी मोस लेकर नहीं खाई थीं। उस समय लोगों को आख की शर्म होती थी, किए काम का मूल्य आका जाता था। और अब मालूम नहीं, दुनिया का खून सफेद हो गया। मिन्नतें करनी क्या जानेंगे। काम हो गया तो फिर तुम कौन और मैं कौन ? मजाल क्या पहचान लें।

एक दिन बड़े अफसरों ने अखानक छापा मारा तो उस समय ट्रांजिस्टर से ‘आहें न भरीं, शिकवे न किए, न तेरा किसी ने नाम लिया’ कन्वाली चल रही थी, सिर झूम रहे थे।

‘यह दफ्तर है कि साईं का तकिया !’ बड़ा अफसर गरजा और आटे में घुन भी पीसा गया। उसकी किसी अन्य महकमे-मे बदली हो जाने से हमारी सिरदर्दी से छुटकारा हो गया।

पर उससे भी बिचित्र एक अन्य कर्मचारी से कुछ साल हुए वास्ता पड़ा था।

उसे दूसरे कर्मचारी आध्यात्मिक शक्तियों का स्वामी मानते थे। सारा

दिन उसके सेवकों का तांता बंधा रहता। वे आते, उसके चरणों को हाथ लगाते। हाथ जोड़कर हुजुरी में खड़े रहते। कोई रोटी वाला बिब्बा लाता। कोई फल-बल। यह अफीम खाए बटेरे की तरह अध-मुदी आंखों से दया की नजरों से थपकियां देता। ऊपर तक उसकी सिफारिशें चलती। इसलिए महकमे का मुख्य कर्मचारी भी अभिशप्त होने के डर से न कभी उसका काम देखता और न उसको कोई काम करने के लिए कहता।

जब उसे किसी ने काम के बारे में कहना तो उसने बड़े अन्दाज से कहना, "प्रभु की लीला बड़ी न्यायी है! यह दफ्तरों के काम दुनियावी काम हैं और हमारी चेतना तो प्रभु से लगी हुई है।" और फिर, थोड़ी देर मस्ती में ऊंगने के बाद उन्होंने बड़े उन्मादक रंग और स्वर में यह दोहा अलापना :

अजगर करे न चाकरी,
पंछी करे न काम।
दास 'मलूका' यूँ कहे,
सब का दाता राम।

अब किसी अन्य दफ्तर को प्रसन्न करते हैं।

एक चपरासी के साथ एक साल बिताने का अवसर मिला था। वह रात को जुआ खेलता। इसलिए दफ्तर में ऊँघता रहता। जब उसे किसी दफ्तर को जाने का बहाना मिलता तो सारा दिन बिताकर लौटता। पूछने पर कहता, "वह दफ्तर क्या है, कबाड़खाना, समझ लें। कागज मिला ही नहीं! एक बाबू छुट्टी पर था। दूसरा अस्पताल गया हुआ था। तीसरे को बड़े साहब ने बुला लिया। मुझे उन्होंने चाय के लिए भेज दिया। वहाँ बड़ी सम्झी क्यूँ मे जब मेरी बारी आई तो पानी खत्म हो गया। नलके बन्द। क्या करता, पाँच घंटे लग गए। यहाँ सौ काम पड़े हैं।" इस तरह उसने अनुपस्थिति के लिए सौ बहाने बनाने। हालांकि वह सिनेमा देखने के लिए चला गया था। ऐसे महाशयों के साथ भी सह-अस्तित्व का सिद्धान्त पालना पड़ता है।

मेहरबां कैसे-कैसे...

शेर जंग जांगलो



आपके भी बहुत-से मेहरबां होंगे। झिझकिए मत, बुरा न मानिए, जरूर होंगे। भई, हरेक के होते ही है। मेरे भी बहुत-से मेहरबां हैं। सबके बारे में जिक्र करने लगूं, तो एक रफ़्तार ही खुल जाएगा। इतनी फ़ुरसत कहां! फिर भी मेहरबांनों के बारे में बात करनी बहुत जरूरी है।

लीजिए, सबसे पहले मैं आपको अपने दोस्त तैश सिंह तैश से मिलता हूँ। तैश साहब को कहानी लिखने का शौक है। एक दिन मिले और कहने लगे, “अगले महीने मासिक ‘हलचल’ में मेरी एक मनोवैज्ञानिक कहानी छप रही है।”

“जरूर। क्यों नहीं!” मैंने उत्तर दिया।

‘हलचल’ का वह अंक आया। उनकी कहानी पढ़ी। भई, मुझे बिल्कुल ही नहीं जंची। मोटे तौर पर कहानी इस प्रकार थी : कहानी का नायक कुरसी पर बैठा है। सामने जमीन पर उसका कुत्ता प्लेट में पड़े बिस्कुट खाने शुरू कर देता है। कुत्ता बिस्कुट खा रहा है और नायक दुनिया में फैली भूख के बारे में सोच रहा है। उसके विचारों की शृंखला उसकी प्रेमिका के आने से टूट जाती है और फिर वह उससे शरीर की भूख मिटाती है। सब तो यह है कि मुझे यह बड़ी ही फ़िज़ूल कहानी लगी।

उसी शाम तैश साहब तंगरीफ़ ले आए। कुछएक औपचारिक बातों के बाद कहने लगे, “प्यारे, ‘हलचल’ में मेरी जो मनोवैज्ञानिक कहानी छपी है, उसने साहित्यिक क्षेत्रों में तहलका मचा दिया है! पर मैं तुम्हें बता दूँ, इस कहानी को समझने के लिए दिमाग़ की जरूरत है! कई उल्लू के पट्टे

ऐसे भी होंगे, जिनको यह कहानी बिल्कुल पसंद नहीं आएगी। अच्छी कहानी ऐरा-नैरा नहीं समझ सकता। इसका फैसला तो आने वाला समय ही करेगा। रास्ते में प्रोफेसर मान साहब मिल गए। कहने लगे, 'बड़ी घटिया किस्म की कहानी थी!' मैं चुप रहा। भई, किस लिए लानत-मलामत करनी है! फिर प्रोफेसर है। पहले तो मैं कहने वाला था कि बाया भटिंडा बी० ए० करके तो तुमने पंजाबी में एम० ए० किया है, तुम्हें क्या मालूम, कहानी किस चिड़िया का नाम होता है! साले बड़े आलोचक बने फिरते हैं! मैं कहता हूँ, दो ही तो मसले हैं दुनिया के सामने—रोटी और सेक्स। और प्यारे, जिस खूबसूरती से मैंने इन दोनों को इस कहानी में निभाया है, मुझे ही मालूम है! खैर, छोड़ो इन बातों को! तुम बताओ, तुम्हारी क्या राय है?"

तो भई यारो, सच मानो, मैं तो कांप ही गया। बड़ी अजीब उलझन में फंस गया था। मुझे उनके सामने यह मंजूर करने में बड़ी शर्म महसूस हो रही थी कि मैं भी उल्लू का पट्ठा हूँ। पर दिल में महसूस कर रहा था कि शायद होऊँ भी! पर मैं सीधा-सादा मामूली किस्म का आदमी हूँ, इसलिए मैंने निवेदन किया, "माफ़ करना, तैश साहब, मैं अभी तक कहानी पढ़ नहीं सका।"

"कोई परवाह नहीं! तुम भाभी जी से कहो, जरा चाय बना लायें। मैं तुम्हें अभी कहानी सुना देता हूँ।"

"इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या होती..." पर आज हमें किसी ने खाने पर बुलाया है। हमें अभी चले जाना है। फिर कभी सही!"

"तो कल?"

"कल हम किसी को अपने घर बुलाने के वारे में सोच रहे हैं।"

"तो परसों?"

"परसों मेरा ओवर टाइम लग रहा है। काफी लेट घर पहुँचूँगा।"

"अच्छा, तो चौथे दिन?"

"तीसरे दिन मैं ओवर टाइम के कारण हुई थकावट दूर करने के लिए आराम करूँगा।"

"कोई बात नहीं, पाँचवें दिन सही?"

और मैंने हथियार हासते हुए कह ही दिया, “हां, पांचवें दिन ठीक रहेगा।”

पांचवें दिन तैश साहब फिर हाजिर थे। जरा भी समय नष्ट किये बिना उन्होंने पूछा, “कहानी पढ़ ली?”

“हां।” मैंने उत्तर दिया।

“कैसी लगी?”

“एक ही बात में फँससा कर दूँ?”

“कर दो।”

“तुम मुझे उल्लू का पढ़ा समझते हो?”

“नहीं।”

“तुम मुझे बाया भट्टिहा बी० ए० किया हुआ समझते हो?”

“नहीं।”

“बस, इससे ज्यादा मैं कहानी के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता।”

और फिर वह कितनी ही देर तक अपनी कहानी के तकनीकी मेलों-वैज्ञानिक पक्षों पर प्रकाश डालते रहे।

और मेरे दूसरे मेहरबान का नाम ही मेहरबान सिंह है। उसे लिखने का शौक तो नहीं, पर सुनने का शौक जबर है। यह उसकी खूबी है कि चाहे कहानी सुने या कविता, उपन्यास का कोई परिच्छेद सुने या नाटक, प्रशंसा के पुल बाध देता है। जब पहले दिन आया, तो कहने लगा, “सुनाओ भाई साहब, कुछ नया लिखा?”

“हां, यार, एक कहानी लिखी थी पिछले हफ्ते।”

“हो जाए फिर!”

“लौं, सुनो फिर!” मैंने कहानी शुरू की, “उस रात बहुत तेज हवा चल रही थी...”

“बहुत खूब! क्या बात है उस रात की! तेज हवा! बहुत अच्छा...! हा जी, फिर?”

“मैं अपने कमरे में बैठा हुआ आशा को पत्र लिखने के बारे में सोच

रहा था...."

"भाई तौबा ! कमाल कर दिया भाई साहब ! आशा को पत्र लिखने के बारे में सोचना ! वाह ! वाह ! इस सोच का मुकाबला नहीं ! एक बार फिर ये पंक्तियाँ पढ़ना, भाई साहब...! उफ़ ! कलम तोड़कर रख दी आपने ! हाँ जी, फिर ?"

"आशा, जो कभी मेरे साथ कालेज में पढ़ा करती थी। आशा, जो मेरे जीवन की आशा थी..."

उसने चीख मारते हुए प्रशंसा की, "हाय, ओए रब्बा ! आशा, जो मेरे जीवन की आशा थी ! अरे भाई साहब, आपके हाथ घूम लू ! तौबा करा दी, तौबा !"

पता नहीं, झूठ था या सच, कहते हैं, मेहरबान सिंह ने एक बार एक शायर से कविता सुनते हुए, प्रशंसा करते समय अपने सिर के बाल नोच डाले थे और शायर के कपड़े फाड़ दिए थे !

मुझे पहले ही दिन उसकी प्रशंसा से परेशानी महसूस होने लगी थी। हमेशा यही कोशिश करता था कि मेहरबान सिंह कुछ न सुनने की मेहरबानी करे, तो अच्छा है। वह कहानी या कोई रचना का थोड़ा-सा भाग सुनने के बाद कहेगा, "भाई साहब, इतनी कातिल चीज...बोतल पीकर ही सुनने लायक है ! मंगवा लीजिए न एक बोतल ?"

मेहरबान सिंह के साहित्यिक मित्रों का क्षेत्र काफी व्यापक है। वह प्रायः कहता है, "भाई साहब, पता नहीं, आपमें क्या आकर्षण है, जो मैं खुद ही यहाँ आ जाता हूँ, बरना लेखक लोग तो मुझे दूर करते रहते हैं !"

मेरे एक और मेहरबान हैं। उन्हें न लिखने का शौक है, न पढ़ने का। बस, हर समय अपनी बहादुरी के कारनामे सुनाने का और दीर्घों हाँकने का जुनून की हद तक शौक है। भारत से नये-नये आए थे। दूर-करीब के रिश्तेदार थे, इसलिए कुछ दिन मेरे पास ही ठहर गये।

एक दिन मेरा एक साहित्यिक मित्र आ गया। हम कुछ अन्य लेखकों के बारे में बातें करने लगे। मैंने कहा, "तुमने सुमन की कविता पढ़ी थी ?

बड़ी बेतुकी-सी कविता लिखी है उसने ! मिलने दे, उसके सामने ही उसकी कविता की खाल उतारूंगा !”

स्वदेश से आए हुए महाशय भी पास ही बैठे थे । बात सुनकर बोले, “भैया जी, आप बिल्कुल न घबराइए । खाल तो मैं उतार फेंकूंगा ! लुघियाना का सँढो भी डरता था मुझसे ! किस साले की हिम्मत है, मेरे होते हुए आपकी ओर आंख भी ऊंची करके देख सके !”

मैंने उन्हें समझाते हुए कहा, “आप यह बात नहीं समझते ! यह और बात है !”

“भैया जी, बात कुछ भी हो, हमने कौन-सी चूड़ियाँ पहन रखी हैं ? जो आपकी हवा की तरफ भी झाँका, साले का मार-मारकर हुलिया बिगाड़ दूंगा !”

मुश्किल से उन्हें चुप कराया । मित्र के साथ फिर वार्तालाप शुरू किया, “प्रोफेसर भुरचरण काफरेंस पर बसा अकड़ रहा था, हालाँकि उसकी ज्वादती थी ।”

स्वदेश से आए हुए महाशय फिर भड़क उठे, “भैया जी, दूर कर दूंगा उस प्रोफेसर की अकड़ ! मैंने सँढो जैसों की अकड़ दूर कर दी, तो बेचारा प्रोफेसर किस खेत की मूली है ! एक बार दिखा दें, कौन है, बस, बाकी मैं समझ लूंगा ! अगर कही फिर अकड़ जाए, तो मुझे इंसान का पूत न कहिएगा !”

जी तो चाहा कि कह दूँ, ‘भई मैं, तो अब भी तुम्हे इंसान का पूत नहीं समझता,’ पर कुछ तो अपने कमजोर शरीर को और कुछ रिश्तेदारी को सामने रखते हुए चुप रहने में ही मैंने भला समझा ।

इसी तरह पाँच-सात अन्य साहित्यिक मित्रों के सामने भी, रोकने और टोकने के बावजूद, उसने शेखी बघारी । बात धीरे-धीरे सभी साहित्यिक क्षेत्रों में पहुँच गयी और सभी मुझसे मिलने में भी कतराते हैं । कहते हैं, “श्रीवास्तव ने तो गुण्डे पाले हुए हैं और वह उनके रोव से बड़ा साहित्यकार बनना चाहता है !”

यद्यपि यह मेहरबान कही और रहने लगे हैं, पर अभी तक साहि-

लियों से टूटे हुए मेरे संबंध ठीक नहीं हुए । अभी भी कभी-कभी वह महाशय आकर दर्शन दे जाते हैं, कुशलता पूछाते हैं ।

एक और मेहरबान... छोड़िए जी यह किस्सा ! मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि अगर सबका जिक्र करने लगूँ, तो एक दफ्तर ही घुल जाएगा और इतनी फुरसत कहाँ है मुझे !

विवाह के ढोल सुहाने

अनंत सिंह काबली



दूर के ढोल सुहाने हों या न हों इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। लेकिन जब विवाह के ढोल सुहाने लगें, तो वह जीवन-भर के लिए एक मुसीबत बन सकते हैं, क्योंकि विवाह एक सन्न बाग है, जिसके जादू-भरे आकर्षण से कोई भी नहीं बच सकता। किसी विवाह पर बजने वाली गह-नाइया मन को मंत्रमुग्ध कर लेती हैं, जबकि वास्तव में विवाह कांटों की एक सेज है। एक भीठा विष है या एक ऐसा रोमांस है, जिसमें हीरो की मौत पहले ही परिच्छेद में हो जाती है।

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि सारे कुंवारे विवाह कराने के अभिलाषी होते हैं, जबकि सभी विवाहित इस मुसीबत से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। एक पार्क में तीन आदमी बैठे थे। एक रो रहा था। दूसरा हंस रहा था और तीसरा माथे पर हाथ रखकर सोच में डूबा हुआ था। किसी ने कारण पूछा, तो पहला कहने लगा, “मैं इस लिए रो रहा हूँ कि मैंने विवाह करवाकर मुसीबत मोल ले ली है और अब छुटकारा पाना भी मुश्किल हो गया है।”

दूसरे ने कहा, “मैं इस विवाहित को देखकर हंस रहा हूँ कि ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद है कि मैंने विवाह नहीं करवाया।”

तीसरा बड़ा सुब्ब होकर बोला, “मैं इन दोनों को देखकर सोच में डूबा हुआ हूँ कि विवाह करवाऊँ या नहीं। क्योंकि विवाह के बाद आदमी के आत्मसम्मान का फातिहा पड़ा जाता है।”

विवाह या शादी को लोग खाना आवादी कहते हैं। खाना आवादी का अभिप्राय यह है कि विवाह करवाकर घर बसाना, न कि बच्चे पैदा

करके देश की जनसंख्या में बढ़ोतरी करना। कई आदमी विवाह का मनोरथ यही समझते हैं। किसी आदमी ने अपने गृहस्थ जीवन के बारे में निस्संकोच कहा था, “विवाह से पहले मेरे छह सिद्धांत होते थे, लेकिन अब छह बच्चे हैं और सिद्धांत एक भी नहीं।” विवाह दुखों की एक खदान में प्रवेश करने को कहते हैं। एक प्रेमी और प्रेमिका का विवाह होने लगा। प्रेमिका कहने लगी, “सुनो प्यारे! हमें अब कोई अलग नहीं कर सकता। हमारा भविष्य अब कितना सुंदर होगा। मैं तुम्हारे दुखों में भी सदा तुम्हारा साथ दूंगी।”

प्रेमी ने उसकी बात काटते हुए कहा, “लेकिन परमात्मा की कृपा से मुझे तो कोई दुख नहीं।”

प्रेमिका ने अपना अभिप्राय स्पष्ट करते हुए कहा, “मैं अब की बात थोड़ी कर रही हूँ। मैं तो विवाह होने के बाद की बात कर रही हूँ।”

सच है, महाविद्वान बेकन ने ही तो कहा है, “विवाह करवाकर आदमी पहले की अपेक्षा सात वर्ष अधिक बूढ़ा लगने लगता है।”

कोई भी प्रेमी और प्रेमिका विवाह से पहले ही जीवन की रीति-रिवाजों का मजा चूट सकते हैं और एक-दूसरे से जी भरकर प्यार कर सकते हैं। विवाह करवाने के साथ ही उनके कई वर्षों के प्रेम का अंत हो जाता है। किसी आदमी को विवाह के लिए उतावला भी नहीं होना चाहिए, जैसे कि अंग्रेजी की पुस्तक ‘दी ओल्ड बैचलर’ में लिखा है कि :

“आदमी जल्दबाजी में विवाह कराता है और फुरसत के समय क्षुब्ध होता है।”

सभी जानते हैं कि शादी खाना बरबाद होती है। फिर भी लोग बड़े उत्साह और उमंग के साथ इस दुर्गम पथ पर चलने के लिए कमर कस लेते हैं। गुस्सा तो उन लोगों पर आता है, जो एक बार हाथ लग चुकने के बाद भी दूसरी, तीसरी या चौथी बार फिर सेहरे धांधकर इस विपत्ति को मोल लेने के लिए चल पड़ते हैं। फिर यह लोभ कर्मों को क्यों कोसते हैं। ‘खुद ही फंसे हो, अब तुझे कौन छुड़ाए’ वाली बात है। डच देश की एक कहावत है, ‘एक बार विवाह करना कर्तव्य होता है, दूसरी बार

गलती और तीसरी बार मूर्खता --।'

आदमी विवाह करवाकर स्त्रियों ने तंग होते हैं और स्त्रियां अपनी जगह पुरुषों से दुखी होती हैं। विवाह का यह वधन चीज ही ऐसी है। एक दुकानदार अपनी पत्नी को साथ लेकर कुरुक्षेत्र के मेले पर गया। वहां जब वह सरोवर में स्नान करने लगा, तो उसने अपनी श्रीमती का हाथ पकड़कर कहा, "आ भाग्यवान, एक डूबकी मिलाकर लगाएं।"

उसकी पत्नी ने धबकाकर पूछा, "वह किस के लिए?"

पतिदेव कहने लगे, "सुना है, अगर कोई स्त्री-पुरुष इकट्ठे इस सरोवर में डूबकी लगाएं, तो वह जन्म-जन्म के साथी बन जाते हैं।"

यह सुनकर श्रीमती ने झट अपना हाथ पीछे खींच लिया और कहने लगी, "पहले ही मुझे इस जीवन में कौन-सा सुख है, जो अब सारे जन्मों का साथी बनाना चाहते हैं?"

विवाह करवाने का काम हर नवयुवक के दिल में होता है। विवाह करवाते समय तो सभी खुशी से फूले नहीं समाते, लेकिन बाद में कोई बिरसा ही प्रसन्न रह पाता है। एक नवयुवक बड़ा हंसमुख और बहुत खुश रहता था। उसकी पत्नी ने उसको बड़ा जोर देकर इस बात पर रजामंद कर लिया कि वह उसके साथ कुछ दिनों के लिए अपनी ससुराल चले। वे दोनों बसों के अड्डे पर गए। स्त्री सामान के पास खड़ी हुई और पुरुष टिकटो वाली खिड़की के आगे लगी कतार में जा खड़ा हुआ। जब वापस आया, तो उसके हाथ में एक ही टिकट था। उसकी पत्नी ने हिरान होकर पूछा, "यह क्या, आप एक ही टिकट साए हैं। मैंने भी तो जाना है।"

"हां, तुम ही ने तो जाना है।" पुरुष ने धीमी-सी आवाज में कहा।

कितने मजे हैं कंवारे रहने में। दम का दम, न घोखा न गम। न लेने की चिंता, न देने की। आदमी कितना आजाद होता है। सिंरहाने बांह रखकर अपनी नींद सोता है, अपनी नींद आगता है। जहां विवाहित 'नून, तेल, लकड़ियों' के धंधों में फंसे रहते हैं, वहां एक कंवारा आदमी लंबी तानकर सोता है और निश्चितता से दिन बिताता है। उसको चिंता

भी किस बात की होगी। मूँछों को ताव देकर खाने के समय होटलों में विराजमान हो जाता है। बढ़िया से बढ़िया खाना खाता है। सिनेमा देखता है। सैर करता और कुदुंब वालों को दुख और चिंताओं की दलदल में फंसे देखकर मजाक उड़ाता है। विवाह करवाना पीढ़ाओं को बुलावा देने वाली बात है। एक फ्रांसीसी कहावत है, 'प्यार शादी की सुबह है और शादी प्यार की शाम।'।

हर रोज एक ही व्यक्ति के माथे लगना, उसी के साथ प्यार करना, उसी के साथ लड़ना-झगड़ना, उसी के साथ रुठना-हंसना, उसी के पास बैठना-उठना, उसी के साथ खाना-पीना। बात क्या, सारा जीवन एक ही को सौंप देना, यह भी कोई बात हुई। यह दिन-रात का साथ, यह घर-बाहर का साथ, यह सारी उम्र का साथ, दोनों को 'बोरे' कर देता है। पति-पत्नी गृहस्थ-स्कूटर के दो पहिये होते हैं, लेकिन स्कूटर वालों ने भी एक पहिया (स्टेपनी) स्पेयर रखा होता है और जरूरत पड़ने पर पहिया बदल लेते हैं।

कई कहते हैं कि पुरुष के लिए विवाह कराना सख मारने वाली बात है। सुखदायक तो स्त्री के लिए भी नहीं, लेकिन उसकी और बात है। शायद इसीलिए महाविद्वान् डिजरायली ने कहा है, "हर लड़की को विवाह करा लेना चाहिए, लेकिन किसी भी लड़के को ऐसा नहीं करना चाहिए।"

विवाह एक ऐसी लाटरी है, जिसके द्वारा पुरुष अपनी स्वतंत्रता और स्त्रियाँ अपनी खुशी का जुआ खेलती हैं। कोई बिरला ही विवाह कराकर अपनी स्वतंत्रता को कायम रख सकता है। पति और पत्नी का झगड़ा अधिकतर इस बात पर होता है कि पति रात को देर से घर आता है। वह शाम को अपने दोस्तों, मित्रों के साथ होटलों, क्लबों और सिनेमाओं में समय बिताना अपना अधिकार समझता है, लेकिन उसकी पत्नी उसको इतनी स्वतंत्रता नहीं दे सकती। वह घरवाली है। इसलिए वह अपने घरवाले को शाम होने घर में ही देखना चाहती है। एक वकील को क्लब में बैठे हुए उसके मित्रों ने पूछा, "क्यों यार, तुम जब रात को देर से घर जाते हो, तो अपनी पत्नी को क्या कहते हो?"

उसने कहा, "मुझे कुछ कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती। वह स्वयं ही सब कुछ कह जाती है।"

विवाह दो दिलों का मिलाप नहीं, बल्कि एक औपचारिक बंधन है। मजबूरी वाला काम है। वास्तव में एक विवाहित जोड़े का आपस का प्यार बिना बेगार के कुछ भी नहीं। एक नवविवाहिता जोड़ा फिल्म देखकर आया। घर आकर पति ने पत्नी को कहा, "क्या बात है, तुम मुझे उस प्रकार प्यार नहीं करती, जिस प्रकार वह सोग फिल्म में करते थे।"

पत्नी ने उत्तर दिया, "आप तो पागलपन की बातें करते हैं। आपको पता है, उनको इस काम के पैसे कितने मिलते हैं?"

कुछ भी हो, आदमी को जीवन-साथी प्राप्त करने का चाव भी बहुत होता है, लेकिन अब वह साथी मिल जाता है, तो, 'कोस न चली, बाबा प्यासी।' वाली बात हो जाती है। फिर उस साथी या साथिन से नाक में धम भी जल्दी आ जाता है। एक स्त्री और उसकी जबान लड़की फिल्म शुरू होने के बाद सिनेमा हॉल में पहुँची। सिनेमा के मैनेजर ने टार्च की सहायता से माँ और बेटी के लिए दो खाली सीटों की तलाश शुरू कर दी, लेकिन किसी ओर भी दो खाली सीटें एक साथ दिखाई न दी। आखिरकार उसने समझ ली कि माँ-बेटी एक दूसरे से दूर जो सीटें खाली हों, उन पर बैठ जाएं। उस स्त्री ने इस बात पर नाराजगी प्रकट की और कहा, "तो क्या तुम एक लड़की को उसकी माँ से अलग करना चाहते हो?"

उसने कहा, "नहीं, बिल्कुल नहीं। मैंने कुछ बपं हुए इस प्रकार किया था, तो उसकी सजा अब तक भुगत रहा हूँ।"

दुनिया की महान् हस्तियों ने भी विवाह का मजाक उड़ाया है। टैनी-सन लिखता है, "विवाह की रचना ही स्वर्गों में हुई है।" बर्नार्ड शा ने कहा है, "स्त्रियों ने पुरुषों को फाँसने के लिए संसार में खाद्यों, फंदों, जालों और पिंजरों आदि का बड़े-बड़ा डाला हुआ है।" इसी प्रकार आस्कर वाइल्ड कहता है, "पुरुष इसलिए विवाह कराते हैं कि वे अकेले

थकावट महसूस करते हैं और स्त्रियां इसलिए कि वह श्रेष्ठ होती हैं; लेकिन विवाह के बाद दोनों को ही निराशा होती है।”

यदि विवाह करवा कर आदमी मन की शांति खो बैठे, तो विवाह उसके लिए एक धोखा है। इसीलिए मैं कहता हूं, कि विवाह के ढोल सुनाने होते हैं।

बड़ी शाट है

प्रो० बलबीर सिंह



अंग्रेज चले गए। हमारे देश की गुलामी दूर हो गयी, लेकिन हमने अंग्रेजों की कुछ बातें अपने लिए अच्छी समझकर पकड़ ली। इसी प्रकार हमने कुछ अंग्रेजी के शब्द इस प्रकार उपयोग करने शुरू कर दिए कि वह शब्द हमारी अपनी मातृभाषा के ही लगने लगे हैं। भाषाएं इसी प्रकार बढ़ती और प्रफुल्लित होती हैं। अंग्रेजी भाषा ने भी कई हिंदी, पंजाबी या हिंदुस्तानी के शब्द अपनाए हैं। उन शब्दों के अर्थ हम अंग्रेजी कोष में देख सकते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि अंग्रेजों ने वह शब्द अपना लिए हैं। कीकर के पौधे या गूद को 'बवूस' कहते हैं। बग्घी दो या चार घोड़ों की गाड़ी है, जिसको तेलुगु भाषा में बंड़ी कहते हैं। टिफन दोपहर का खाना है। समुद्री तट को घाट कहा जाता है। यह सारे और अन्य कितने ही शब्द अंग्रेजी शब्दकोष में मिल जाएंगे।

इसी प्रकार अंग्रेजी के भी कई शब्द पंजाबी में आम उपयोग किए जाने लगे हैं। पैक्स, सारी, गुड, बैड, शाट आदि शब्द हम प्रतिदिन की बातचीत में आम लोग उपयोग करते हैं। किसी को कसकर ठोकर मारें, ताकि उसको उसके परलोक सिंधार गए बड़े-बूढ़े भी याद आ जाएं और उसका सारा शरीर पीड़ा से कांपने लग जाए। आप धीरे से 'सारी' कहकर उसका गुस्सा शांत कर सकते हैं। उसकी पीड़ा, उसका गुस्सा यों उड़ जाएगा, जैसे आघी में मक्खी-मच्छर उड़ जाते हैं, और आप 'सारी' कहकर आनंद लूटें।

इन शब्दों में ही शब्द हैं, 'टाइम' या समय और 'शाट' या कमी। हमारे प्रत्येक वर्ग के लोग इन शब्दों का प्रयोग करते हैं। लेकिन अनपढ़

लिए बच्चे को अपनी छाती का दूध देना बंद कर दिया। बच्चों को आयाओं के हवाले करना शुरू कर दिया। बेबी सेंटर अस्तित्व में आए। बेबी-होम बनने लगे, जहां माताएं अपने बच्चों को छोड़कर आजाद होने लगी। बच्चे ने जब मां की छाती से दूध न पिया और ढाई-तीन साल की उम्र में ही पब्लिक स्कूलों में ढकेले जाने लगे, तो बच्चा माता-पिता के सालन-पालन से दूर होने लगा। भारत में भी जेनरेशन गैप ने जन्म लिया। इस जेनरेशन गैप का परिणाम हमारे सामने है। बच्चे माता-पिता का हुक्म मानने को तैयार नहीं। बच्चे बागी होते जा रहे हैं। पढ़ने वाले बच्चों से यह बात आरंभ हुई और अनपढ़ बच्चे भी इसके प्रभाव तले आ गए। घरों में, देश में अशांति बढ़ने लगी, सौ एक सभ्यता का दूसरी सभ्यता के साथ मेल-मिलाप होने लगा। बस, यही हाल भाषाओं का है, शब्दों का है। इन शब्दों का दुरुपयोग भी खूब होता है।

यह टाइम न होने की बीमारी हर अमीर-गरीब, पढ़े हुए और अनपढ़ को है। 'सॉरी' कहना हर शिक्षित और अशिक्षित को आ गया है। शार्ट का उपयोग प्रत्येक व्यक्ति कर लेता है। यह शार्ट वास्तव में 'शार्टेज' है, जिसके अर्थ हैं—कमी, या अभाव, लेकिन अनपढ़ भाई इसको शॉर्ट ही कहते जा रहे हैं।

बंबई की किसी पत्रिका के संपादक को पत्र लिखा, "श्रीमान जी, मैंने अंग्रेजी में एक नाटक लिखा है। बंबई की अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशन कंपनी ने उसकी पांडुलिपि को पढ़कर छापना स्वीकार कर लिया है। आपका नाम संशोधक के रूप में उपयोग करना चाहता हूं। पांडुलिपि भेजना चाहता हूं। कृपा करें।" "प्रतिशत रायल्टी आपको मिलेगी।" उत्तर शब्द भीये शब्दों में आया, "प्रोफेसर साहब, आपकी रचनाएं मैं विशेष रूप में शौक से पढ़ता हूं। मुझे खुशी होगी, आपका काम करके। रायल्टी की बात मुझे अच्छी नहीं लगी। एक घर तो डायन भी छोड़ देती है, लेकिन समय कहाँ है (वेयर इज दी टाइम) इस काम के लिए, लेकिन आपका काम तीन महीने बाद कर दूंगा। आपकी प्रकाशन कंपनी को टेलीफोन किया था। उन्होंने इतना समय देना स्वीकार कर लिया है। मैंने डायरी में तीन महीने के बाद आपका काम करना दर्ज कर लिया है।"

अगले दिन संपादक महोदय विश्वयात्रा पर चले गए। चार महीने के बाद पत्र लिखा, "श्रीमान जी, क्या पांडुलिपि भेज दूँ?" उत्तर आया, "आज ही विश्वयात्रा से लौटा हूँ। समय कहाँ है? लेकिन आपका काम कर दूंगा। पांडुलिपि भेज दें।" पांडुलिपि भेज दी। संपादक महोदय के पास समय कहाँ था। पंद्रह वर्ष से ऊपर हो गए हैं। प्रकाशक कंपनी मुझे स्मरण-पत्र भेजकर हार गयी है। मैं संपादक महोदय को स्मरण-पत्र लिखकर तंग आ चुका हूँ। कोई उत्तर नहीं। शायद उनके पास उत्तर देने का भी समय नहीं है।

संसार में सात आश्चर्य हैं। कई संपादक आठवाँ आश्चर्य बन जाते हैं। मेरे लेख राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में छपते हैं। एक राष्ट्रीय पत्रिका के संपादक को चार बार लेख भेजे। चारों बार 'सॉरी' शब्द के साथ लौट आए। पत्रिका के मालिक को लिखा। उसने अफसोस किया और लिखा, "संपादक आपको सीधे तौर पर उत्तर देगा।" संपादक का उत्तर आया, केवल गालियों का पत्र। वह उत्तर ज्यों का त्यों मालिक को भेज दिया और लिखा, 'आपके संपादक की साहित्यिक विद्वत्ता और उसकी पृष्ठभूमि इस पत्र से स्पष्ट है। मैं यह लेने को तैयार नहीं। अस्तु महात्मा बुद्ध के कथनानुसार 'अगर देने वाले की चीज न लें, तो वह चीज देने वाले की होती है।' इसलिए यह गालियों का पत्र आपके संपादक को मुबारक।" उस संपादक ने सब संपादकों को अपनी संपादक-बिरादरी का वास्ता देकर मेरे लेख न छापने की प्रार्थना की। कइयों को अपनी खान-दानी बिरादरी का वास्ता दे डाला। ऐसे संपादक को आप किस आश्चर्य का नंबर देने? प्रियवर, यह 'सॉरी' और 'टैम' (टाइम) की कारशतानी है।

'बोगन वेलिया' का पौधा काफी घना और मोटा हो गया था। उसकी टहनियाँ मेरी खिड़कियों को तोड़कर मेरी दृष्टि को खराब कर रही थी। इनको या तो कटवा दिया जाए या छंटवा दिया जाए। घरों में काम करने वाले मालियों की टोली मेरे घर से कुछ दूरी पर हर रोज ग्यारह बजे से तीन बजे तक बैठी थी, वीढ़ियाँ पीती थी और गपशप में मस्त हो जाती थी। सोचा, चलो, इनको अपनी मुश्किल बताकर इसका हल ढूँढ़ा

जाये। अस्तु, एक दिन समय निकालकर उस माली टोली के पास जा पहुँचा। अपनी मुश्किल बतायी।

“तो आप क्या चाहते हैं सरदार साहब?”

“दोस्तो, चाहना क्या है, या तो उस पौधे की छांट दें या काट दें ताकि मेरी खिडकियो में प्रकाश आ सके।”

एक बूढ़ा माली बोला, “हाँ साब, हर रोज देखते हैं। वह पौधा छांटा जाना चाहिए।”

“इसीलिए मैं आपके पास आया हूँ। जितने पैसे कहेंगे, दे दूंगा।”

“पैसे की तो कोई बात ही नहीं साब!” दो-तीन माली बोले, लेकिन वह बूढ़ा मेरा मुँह जिढ़ाते हुए बोला, “एँ, एँ, एँ है एँ, पर टेम किधर है साब?”

मैं अवाक़ उसका मुँह देखने लगा। एक अन्य माली बोला, “साब, टेम की बड़ी शॉट है।” “टेम। शॉट! बाह आलसियों का देश!” मैं धीरे से बड़बड़ाया, लेकिन ऊंची आवाज़ में यही बोला, “दोस्तो, यहाँ तीन-तीन, चार-चार घंटे गपशप में बिता देते हो, काम करके पैसे कमा लो।”

“वह तो हमारा अपना टेम है, पर काम करने का टेम किधर है? बहुत शॉट है!” बूढ़ा माली बोला।

मैं क्या कर सकता था। कान लपेटकर घर की ओर लौट आया। मेरी पीठ उनकी ओर हुई और वे एकदम ‘ही-ही’ करके गरज उठे, “हमारा टेम मांगता है।” काम न करने वालों का देश!

हम टांग पर टांग रखकर हवाई किले गड़ते-सोड़ते रहते हैं, लेकिन काम करते समय हमें पिस्मू पड़ जाते हैं और टेम का रोना रोते हैं।

हमारे देश में कोई चीदह कला संपूर्ण है, कोई सोलह कला संपूर्ण। लेकिन बच्चे न जाने कितनी कला पूर्ण होते हैं। हम दोनों जवान थे। और मलकियत, हमारा प्रिंस आफ वेल्स, हमारा पहलौठा अभी छोटा ही था। सर्दियों की बहार थी। रात के लगभग चार माँटे चार बजे होंगे। सोये हुए मलकियत की फासतू कला जाग उठी। उसने रोना शुरू कर दिया। उसकी माँ उसको चुप कराने का प्रयत्न करती, लेकिन वह चुप नहीं हो रहा था। अगर आप बाप हैं या माँ हैं, तो आपको पता ही होगा कि पति-

पत्नी में समझौता होता है कि पत्नी बच्चे जन्मेगी और रोते समय बच्चे को पति चुप करायेगा। अगर दम समझौते का आपको पता नहीं तो चुप-चाप अब यह समझौता कर लें और बाकी बची जवानी आराम और सुलह-सफाई से बिताएं। अभी गिरे बेरों का कुछ नहीं बिगड़ा। यह लेख घरम करने से पहले घर जाएं। अगर घर बैठे हैं, तो लेख पढ़ना बंद करें और अपनी जीवन-साथिन को बुलाकर यह समझौता करें। समझौता उलटा न कर लें, वरना आपको सेने के देने पड़ जाएंगे। आपको दुःख होगा। मेरा खयाल है, आप मेरा मतलब भली भांति समझ गये होंगे।

तो समझौते अनुसार दिस पर पत्थर रखकर हमने रजाई की गर्मी का त्याग किया और अपनी झूटी निभाने की छातिर मलकियत को उठा लिया और 'पुच-पुच' करने लगे, पर उस पर कोई असर न हुआ। बहुत पुचकारा, पर मलकियत, मेरी जीवन-साथिन का जन्मा साल, टस से मस न हुआ। उसकी री-री जारी रही। उसको चुप कराते-कराते मैं उसके साथ स्वयं मिलकर रोने की रट तक पहुंच गया। जी चाहे, उसको कहूं, "अच्छा पाप जी, आपकी रोने की झूटी मैंने ले ली और आप मुझ पर तरम खाकर चुप कर जाएं," लेकिन मलकियत की फालतू कला जारी रही। असल बात यह थी कि इतनी बारी कहने पर अगर मलकियत चुप कर जाता, तो फिर वह हमारा बच्चा कैसे होता। आखिरकार मैंने तंग आकर कहा, "मलकियत, वह देर कीआ!" पर वह देखे क्या! भला सदी के मौमम में रात के चार-भाड़े चार बजे कीए थोड़े उड़ते हैं! उसने अपनी फालतू कला और तेज कर दी। उसकी मा कड़ककर बोली, "प्रोफेसरा, इसे बाहर ले जा। मेरी नीद न हराम किए जा। भला मेरी संतान कीए-चिड़िया से चुप कर जाये!" मैं कान लपेटकर उसको बाहर ले गया। इधर-उधर घुमाते-फिराते हुए मैंने उसे पूछ ही लिया, "बेटा, क्या बात है, क्यों इस प्रकार रो रहा है?" उसने रोते हुए जवाब दिया, "मैंने चाय पीनी है।" — "ले, दूतनी-सी बात के लिए गला फाड़ रहा है, और हमारी नीद हराम की हुई है!" मैं उसको अंदर ले आया और उसकी मां को कहा, "जरा उठ और थोड़ी-सी चाय बना दे बच्चे को!"

"दूध कहां से आयेगा? हमारा दूध देने वाला तो सान बजे आयेगा।"

“रात के बचे हुए दूध मे से दो घूट चाय बना दे !” मैंने कहा ।

“मैंने रात खाना अच्छी तरह नहीं खाया था । इसलिए सारा दूध पी लिया था ।”

“अच्छ...छ...छा !” मैंने हकलाते हुए उसकी ओर देखकर कहा, “मेरे जन्म-जन्मांतर की दुश्मन, तुझे सारा दूध पीने का क्या शौक हो गया था । दूध की दो घूटें रख लेती, तो तेरी तोंद कम मोटी नहीं हो जानी थी ।”

“तोंद का उलाहना न दे । फालतू भार भी तो मैं ही उठाती हूँ ।”

“और तेरी तोद की जो मुझे तकलीफ होती है, उसका तुझे ज्ञान ही कुछ नहीं ।”

मलकियत की मां हसते-हंसते रखाई में से निकली और बोली, “इस नामुराद की बात न करो । न जाने कब की चाय इसके सिर पर सवार है !”

“चलो छोड़ो, बच्चे बंदर स्वभाव के होते हैं ।”

“तुझे भी चाय की तलब लगी होगी । मुझे कहता जा रहा है । इस लाडले को कुछ नहीं कहता !”—बह चारपाई से बिफरी हुई शेरनी की तरह उतरी ।

मुझे गुस्सा तो बहुत आया, लेकिन मैंने हथियार फेंकते हुए कहा, “तुम पानी गर्म रखो । मैं दूध का कुछ प्रबंध करता हूँ । पानी रखेगी इससे धीरज हो जायेगा, नहीं तो समझौते की मेरी वाली शर्त टूट जायेगी । और मैं अपने हथियार फेंक दूंगा ।” मलकियत की मां को मुझ पर कुछ तरस आ गया । अपने शरीर के कपड़े ठीक करते हुए बोली, “आज तो मैं तेरी बात मान लेती हूँ । भविष्य के लिए इसकी आदत नहीं पड़नी चाहिए ।”

मैंने आंखों ही आंखों में उसका घन्यवाद किया और लोटा लेकर घर से दूध लेने के लिए निकल पड़ा—बच्चे की चाय के लिए दूध लेने ! किसी हलवाई की दुकान अभी तक नहीं खुली थी । घूमते-फिरते एक ग्वाला नजर आया । साइकल पर दूध देता फिर रहा था । उसको मैंने खड़ा किया और याचना की, “भाई, मुझ पर कुछ तरस खा । आधा किलो दूध दे

दे। मेरा प्रिंस आफ वेल्स, मेरा पहलीठा रो रहा है !”

“सरदार साहब, माफ करना, दूध नहीं दे सकता। मेरे ग्राहकों को ही पूरा नहीं होता। आजकल दूध की बड़ी शार्ट है।”

“शार्ट है, वाह जी, वाह !” मैंने माथे पर हाथ मारते हुए कहा, दूध की नदियों वाले देश में भी दूध की शार्ट !” मैं बड़बड़ाया, “ओह हो...बड़ी शार्ट है !” मैंने निश्वास लिया और साइकल पर सवार होते हुए ग्वाले को प्रार्थना की, “अरे भाई, सौ पचास ग्राम ही दूध दे दे।”

वह साइकल पर सवार हो गया और बोला, “दूध की बड़ी शार्ट है। मेरे पास बात करने का भी टैम नहीं। मैं तो दूध की एक बूंद भी नहीं दे सकता।” यह कहकर वह हवा हो गया। कुछ अपनी किस्मत को और काफ़े के भाग्य को कोसता मैं घर की ओर लौटा। मैं मा-पुत्र के बीच में पिसता जा रहा था। जी वाहा, यह खाली लोटा सिर मे मारकर अपने-आप को लहू-लुहान कर लूं।

रास्ते में एक घर आया, जिसकी बत्ती जल रही थी। मुझे पता था, उनके घर में भैस थी। उनका दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुल गया। अंदर जाकर सामने खड़े घर के मर्द से याचना की, “मेरा बच्चा चाय के लिए रो रहा है। दूध नहीं मिल रहा। उसकी बड़ी शार्ट है। मैंने ग्वालों की मिन्नतें की। उनके पास टैम नहीं, मेरी बातें सुनने के लिए। हमारा दूध देने वाला लेट आयेगा। दूध के दो बम्मच दे दें।”

मर्द अवाक् मेरा मुह देखने लगा, मानो कह रहा हो, “न जान, न पहचान ! बड़ा वेशरम है। दूध जैसी अमृत चीज मांग रहा है !” उसके उत्तर देने से पहले ही दूसरे दरवाजे से उसकी बीबी अंदर आते हुए बोली, “कोई बात नहीं भाई जी, लाइये लोटा। बच्चे तो ईश्वर का रूप होते हैं।”

“होते होंगे जी !” मैंने लोटा उसके सामने रखते हुए कहा, “पर मेरा बच्चा तो निरा शैतान का रूप है !” मैं रज़ाई की गर्मी त्यागने और घर-घर कापते दुःख का अनुभव करते हुए बोला।

“यों न कहें भाई जी, बच्चे भगवान् का रूप होते हैं।” वह स्त्री लोटा लेकर अंदर चली गयी। उसका आदमी सूखी नजरों से मेरी ओर

देखने लगा । जैसे मैं उनको घोषा दे रहा होऊँ और घोषा देना ही मेरे जीवन का धंधा हो । कुछ क्षण मेरी ओर देखते हुए वह बोला, "पहले भी कभी मेरी गंरहाजिरी में मेरे घर दूध पीने आये हो ?"

मैं सारी स्थिति को समझता हुआ कांपते हुए कहलाया, "नहीं-नहीं महाराज जी, कभी नहीं, मैं कसम खाता हूँ ।"

"हूँ..." वह सोचता हुआ बोला, "अजनबी घर में इस समय आने की सेरी हिम्मत कैसे हुई !"

"महाराज जी, नेक संतान के लिए माँ-बाप को क्या-क्या मुसीबतें नहीं झेलनी पड़ती हैं !"

इतने में स्त्री लौटा ले आयी । उसमें आधा किलो दूध होगा ।

"बीबी जी, बहुत-बहुत धन्यवाद ! कितने पैसे दू ?"

"पैसे !" उसका आदमी कड़का, एक कदम मेरी ओर उठाकर बोला, "हम दूध बेचते नहीं । तेरे जैसे सफंगे को हमने दूध दे दिया !"

इस खयाल से कि यह भाई, कहीं मेरा लोटा छीनकर मलकियत को रोने के लिए और मुझे किए हुए समझौते से मुक्कद होने के लिए मजबूर न कर दे, मैं वहाँ से धन्यवाद करता हुआ दोड़ पड़ा । घर आने पर देखा कि मलकियत आराम से रजाई में खरटि भर रहा था ।

सो, प्रिम पाठकण, यह टेम न होने का जमाना है । शार्ट का युग है । आज चीनी की शार्ट है, कल बनस्पति की ; कभी आटे की, कभी दूध की, अगर किसी चीज की कमी नहीं तो वह है महंगई की...धक्कों की...हरि ओम् तत् सत्...।

साया

रामलाल नाभवी

□

‘साया’ है तो अक्षरों का एक शब्द, लेकिन, कुल सृष्टि इस एक शब्द में सिमटी हुई है। कौन है जिसे साये की आवश्यकता नहीं है और कौन है जो किसी के साये में नहीं रहता ? पैदा होने से लेकर मृत्यु तक अगर किसी वस्तु की आवश्यकता हर स्थान और हर समय रहती है, तो वह है साया ।

सृष्टि में दो सच्चाइयाँ, रोशनी और अंधेरा हैं । साया अंधेरे का एजेंट है । जब अंधेरे में जाता है तो उसमें छुप जाता है और दिखाई नहीं पड़ता । रोशनी हो तो दिखाई पड़ता है । जरूरत है किसी वस्तु के होने की । साया होता है वस्तु के भीतर । वह वस्तु अंधेरे में हो तो साया बाहर नहीं आता, रोशनी में हो तो बाहर आ जाता है । रोशनी की शिभाछत अंधेरे से है और अंधेरे की पहचान रोशनी से । हर व्यक्ति जो रोशनी की दुनिया में रहता है अपनी पहचान अपने साये से करवाता है । कहावत है किसी को अगर पूनम की रात में अपना साया दिखाई न पड़े तो उसकी मौत नजदीक होती है । रोशनी अकेली है तो उसकी मौत है और अंधेरा अकेला है तो उसकी मौत है । जीवन इन दोनों के मिलाप का नाम है । साये के बिना कौन-सा काम है जो हो सकता है !

साये का शासन हर जगह पर है । जीवन पर मौत का साया है । मौत पर जीवन का साया है । जिन्दगी मौत के डर से भाग रही है, मौत ठिठक गई है जिन्दगी के डर से । जिन्दगी और मौत की दीड़ चल रही है और साया आनन्द सूट रहा है ।

चोर गहरे अंधेरे में चोरी करता है । उसे साये का डर है । अपने ही

साये का, किसी और के साये का । वह रोशनी के सब नक्श मिटाकर भीतर कदम रखता है । बुरा काम करने के लिए अंधेरा चाहिए । अंधेरे में वह हाथ-पांव मारता है । अंधेरे में ही वह भाग जाता है । अंधेरे में छुपा साया उसके साथ ही अंधेरे में गुम हो जाता है ।

बड़े-बड़े व्यक्तियों, इतिहासकारों, लेखकों, व्यंग्यकारों और लीडरों का नाम तभी फैला, जब उन पर रोशनी का साया रहा । माता-पिता का साया रहा । गुरु का साया रहा । बाप का साया रहा । साया क्या है वास्तव में एक दुआ है ।

साया न मिले तो कुछ खोया-खोया लगता है । यही क्याल साये की तलाश कराता है । किसी काम में जुटने के लिए तैयार रहता है । साया कहता है कि उसे कोई तलाश करे । उसकी पहचान हो । मदद करने पर उतर आए तो कोठिया, महल बना देता है । मुहब्बत-प्यार का साया मिल जाए तो क्या कहने !

रोशनी में साया आपका साथ नहीं छोड़ता । वह कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी दायें, कभी बायें अठखेलिया करता हुआ आपके साथ ही चलता है, कभी कदमों में लिपट जाता है । कभी आपके कद से बड़ा होकर अपनी ताकत का आगे सबूत देता है, अपनी हैसियत जताता है । कभी आपसे आगे निकल जाता है और कभी पीछे रह जाता है । वह आपका साथी है, आपका हमदम है, आप हजार कोशिशें करें, वह आपसे जुदा नहीं होगा । आप नाचिए, कूदिए, वह आपके साथ नाचेगा, कूदेगा । यही उसकी शान है । बच्चों के लिए वह एक खिलौना है । बच्चा हो या जवान या बूढ़ा उसका मलूक सबसे बराबर है ।

आप सड़क पर अकेले जा रहे हैं । इर्द-गिर्द कोई नहीं । सड़क पर चारों ओर रोशनी है । दिल की बातें जवान पर आ रही हैं । राज की बातें, प्यार की कहानियां, कत्ल-ओ-गारत, चोरी, डकैती, लूट-खसोट, स्मर्गलिंग की बातें, जो कभी अंधेरे में हुई थी आप अपने से दुहरा रहे हैं । नाया आपके साथ है । सब कुछ गुन रहा है । साये की तरह आपके साथ लगे रहने पर भी वह आपका भेद किसी को नहीं बुताएगा । आपको भी नहीं । पूछकर देख लें । वह आपका भेदी है, आपका है, आपका ही है,

आपका ही रहेगा ।

लड़ाई के मैदान में तलवार, तीर, कमान का साया होता है । यह साया न हो तो लड़ाई कैसे हो और किस तरह हो ? साखों धराने इस एक साये में पल रहे हैं, गरदन उठाकर चल रहे हैं और डंके की चोट से कहते हैं :

"तेगों के साये में हम पसकर जवां हुए हैं ।"

जंगल में आप जा रहे हैं । थककर घूर हो चुके हैं । ऊपर और नीचे से आपका शरीर झुसस रहा है । मौत का फरिश्ता आपका इन्तजार कर रहा है । अचानक एक दीवार पड़ गई । आप इसके साये में बैठ गए । शरीर में ताजगी आई । आप अपने सफर पर फिर चल पड़े । मौत का फरिश्ता अपनी नाकामी पर हैरान है । साया सेवा करता है और बदले में कुछ नहीं मांगता, कुछ नहीं लेता । आप भगवान् का शुक्रिया करेंगे, साये को धूल जाएंगे । साये को कोई शिकायत नहीं । वह एहसान नहीं जताता, यही उसका बड़प्पन है ।

पेड़ किसे साया नहीं देता ! इन्सान हो या हैवान, चरिंदे हों या परिंदे, जब चाहें अथवा जब तक चाहें इस पेड़ पर या पेड़ में रहे, जब चाहें चले जाएं । इसका सलूक सबसे बराबर है । साया किसी जाति, धर्म, देश, कौम से सम्बन्धित नहीं । साये की अपनी कोई जाति नहीं । वह सबका है और सब उसके हैं । साये में ठंडक है, चैन है, सकून है ।

रोगनी हो तो साया कैसे न हो ! आप हजार बार दरवाजा बन्द कर पदें खींचें, कुंडिया खड़ाएं, साया चुपके से आपके साथ भीतर घुस जाएगा । आप हजार टक्कर भार बहलाएं, फुसलाएं, लासल दे, साया कभी आपका साथ नहीं छोड़ेगा, रोगनी में आप कोई काम उसकी मौजूदगी के बिना नहीं कर सकते । वह आपके किसी काम में दखल नहीं देगा । आप तो उसके काम में दखल दे ही नहीं सकते ।

साया पैदाइश के साथ पैदा होता है, जीवन-भर साथ रहता है, मरने के बाद अरपी या जनाजे के साथ जाता है ।

साये की बहुत किस्में हैं । इनमें एक जुल्फों का साया है । जितनी धनी, लम्बी जुल्फें होगी, उतना ही आनन्ददायक साया होगा । कवियों

के दिमागों पर जुल्फ सीधा हमला करती है। इसके साये के नीचे डेरों कविताएं लिखी जा चुकी हैं, लिखी जा रही हैं और लिखी जाएंगी। जब से जुल्फों ने कटना या छोटा होना शुरू किया है कविताओं में जान ही नहीं रही। आप घनी, लम्बी, काली साये की तरह जुल्फों के साये के नीचे बैठकर तो देखिए। एक फारसी के कवि ने कहा है, "शुनीदा कै बबद मानिदे दीदा।"

मैंने यह लेख एक छतरी के साये में बैठकर लिखा है, आपने किस साये में बैठकर इसे पढ़ा है? बताइए, ऐसी कोई जल्दी नहीं, अल्ला मियाँ का साया कायम रहा तो फिर मुलाकात होगी।

देसी टट्टू खुरासानी दुलत्ती

के० एल० गर्ग

□

देसी साहब अभी-अभी जागे हैं और रंग का ओवरकोट पहनकर टहलने की तैयारी कर रहे हैं। रंग के ओवरकोट की जरा ठहरकर बात करेंगे। पहले उनके पालतू जिकी-पिकी कुत्ते के बारे में बात कर लें ! हा, तो साहब जाग उठे हैं, पर कुत्ता अभी गहरी नींद सोया हुआ है। वह शायद किसी इंग्लिस्तानी बिलबेड के सपने ले रहा है ! देसी चीजें उसके कमर तले नहीं आती। इंग्लैंड में अब देसी आदमी इम्पोर्ट नहीं हो सकते, पर अंग्रेजी कुत्ते हो सकते हैं। देसी साहब प्रयत्न करेंगे कि उसके लिए इंग्लैंड की ही किसी बिच (कुत्तिया) का प्रबंध किया जाए। देसी साहब भी अंग्रेजी कुत्ते के बहाने विदेश-यात्रा कर आएंगे।

हा, तो देसी साहब बड़े ही प्यार से अपने अंग्रेजी कुत्ते को जगाते हैं। सिर पर मोहन्यत से हाथ फेरते हैं और बड़े ही मधुर स्वर में 'मोना'- 'मोना' का राग बलापते हैं। कुत्ता अपनी आलस्यपूर्ण पलकें खोलता है और अपने देसी साहब को देखकर च्यू-च्यू करने लगता है। शायद जल्दी जगा देने पर गुस्सा दिखा रहा है। समझ ही नहीं आता कि क्या कह रहा है ! अंग्रेजों की तरह बोलता है न ! अवश्य ही कह रहा होगा :

“यू ब्लडी इंडियन डाग ! काण्ट सी ? आई वाज हैविंग सवली ड्रीम आफ माई इंग्लिश बिलबेड !”

देसी साहब को बिल्कुल गुस्सा नहीं आता ! गोरी चमड़ी वाले मालिक सदियों से हमारे साहब लोगों को 'इंडियन डाग' कहते आ रहे हैं, बल्कि जब वह 'ब्लैक डाग' कहते थे, तो हमारे देसी साहब के पूर्वज दुमे हिलाते हुए सिजदे में बिछ-बिछ जाते थे। फिर यह देसी साहब अपनी खानदानी

परंपरा को कैसे भुला सकता है :

रघुकुल रीति सदा चलि आई

प्राण जाइ, पर वचन न जाई

साहब स्वयं यद्यपि देसी है, तथापि अपने कुत्ते को अंग्रेजी ढंग से पालता है। शायद इसीलिए अपने कुत्ते का नाम देसी तर्ज वाला नहीं रखता। यह कुत्ता दरवेश, दीनू या धरमा नहीं हो सकता। यह सदा जानी, टोनी, साटी आदि ही कहलाने में गर्व समझता है ! देसी साहब को यह कुत्ता अपने किसी अंग्रेजी अफसर से भेंट में मिला था। यह तब से ही मनखन, पेस्ट्री, बिस्कुट या फ्रीम-रोल खाता है, जब कि आम औसतन हिन्दुस्तानी बाजरे की रोटी के लिए भी गली के आवारा कुत्तों की तरह लड़ते थे !

देसी साहब स्वयं बिना चीनी के चाय पीता है, पर अपने इस कुत्ते के लिए खालिस दूध का प्रबंध करता है और दूध भी अपने सामने दुहाकर खाता है ! कुत्ते को अडल्टरेटेड दूध पिलाना अपना अपमान समझता है। उसको डर है कि कहीं कुत्ता हिन्दुस्तानी अडल्टरेशन के बारे में बी० बी० सी० पर भाषण न दे आए। एक बार साहब की नौकरानी ने अपने रोते हुए बच्चे के लिए दूध-भर दूध मांग लिया था। साहब ने उसकी ओर पों देखा था जैसे कह रहे हों 'तेरे बच्चे को क्या सिर पर उठाएंगे। हमारा मोनी क्यापि एगा...!' उनके 'ढाग-सब' पर तो एक बहुत बड़ा प्रश्न लिखा जा सकता है ! जब पेंशन लेने के बाद साहब अपनी आटोबामोप्राफी लिखेंगे, तो उसका आधे से अधिक भाग कुत्तों से भरा हुआ होगा। साहब कभी-कभी मूड में आकर कह ही देते हैं :

"आदमी की अपेक्षा यह कुत्ता ज्यादा वफादार होते हैं। युधिष्ठिर के साथ अंत तक एक कुत्ता ही गया था। यह भी मुझे स्वर्गलोक तक छोड़कर आयेगा...मोना...पुच-पुच...मोना !"

साहब के देसी दोस्त साहब की ऐतिहासिक 'नालेज' (ज्ञान) की कद्र करते हैं।

साहब स्वयं घुली हुई भूंग की दाल, आलू-पालक और पौदीने की के साथ खाना खाते हैं। शुद्ध अहिंसावादी हैं। शत-प्रतिशत शाका-

हारी—वैष्णव संप्रदाय के अनुयायी। पर कुत्ते के लिए तो मीट का प्रबंध करना ही पड़ता है। जब से कसाई भी सड़ने भगत बनने लग पड़े हैं, बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो रही है, पर कुत्ते के लिए तो मांस का प्रबंध करना ही पड़ेगा, चाहे इम्पोर्ट साइसेंस के लिए किसी एम०पी० की ही आपलूसी करनी पड़े।

सारी-सारी रात जागकर कुत्ते की रखवाली करते हैं, कि कहीं कोई चोर ही न उठा से जाए। ऐसी इंग्लिश नस्ल का कुत्ता सारे भारत में नहीं मिल सकता। भारत में जादूगर मिल सकते हैं, कोहेनूर हीरे मिल सकते हैं, शहीद मिल सकते हैं, पर इंग्लिश नस्ल के कुत्ते नहीं मिल सकते। इसीलिए साहब स्वयं जागते हैं और कुत्ता मजे से सोता है।

देसी साहब अपनी बीमारी के दौरान अस्पताल से दस पैसे की परची पर दवाई लाते हैं, लेकिन कुत्ते के लिए अंग्रेजी डाक्टर, अंग्रेजी दवाइयाँ और अंग्रेजी नुस्खे। साहब अच्छी तरह समझता है कि मालिक मालिक ही होता है चाहे कुत्ते का पुत्र ही न, क्यों हो।

हां, तो साहब ने आज फिर पुचकारकर कुत्ते को जगाया है। कुत्ते का प्यारा-प्यारा सपना भुने पापड़ की तरह तिड़-तिड़ करके टूट गया है। वह साहब के पुच-पुच करने पर भी घुर-घुर किये जा रहा है। साहब को और प्यार उमड़ता है। कुत्ता उसके रंग ओवरकोट पर पांव मारता है। साहब ओवरकोट पर लगी मिट्टी झाड़ता है। कुत्ता फिर पांव मारता है और साहब की आंखों में सीधा झांकता है। घुर-घुर करता है। लगता है, जैसे पूछ रहा हो :

‘आप लोग यह हमारी उतरन कब तक पहनते रहेंगे? अब तो आजाद हो गये हैं। अपनी पोशाक पहननी सीखिये।’ साहब कुत्ते के सिर पर हाथ फेरकर मुसकराता है, जैसे कह रहा हो :

‘भोले, अंग्रेज कुत्ते ! हम अपनी मनोवृत्ति का क्या करें, जो अपने मालिकों की उतरन पहनकर संतुष्ट हो जाती है ? साहित्य में, समाज में, रहन-सहन में, खान-पान और बोलने तक में सब जगह हम पश्चिमी उतरन पहनकर ही अपना समय बिताने में अपनी शान समझते हैं।’

कुत्ता अभी भी घुर-घुर किए जा रहा है, और साहब अभी भी उसका

सिर पलोसे जा रहा है। अपनी-अपनी मजबूरी है, साहब देसी हैं, और कुत्ता एकदम इंग्लिश। हमारा एक मास्टर अभी भी अंग्रेजी चीजों को ही खरीदता है। बात-बात पर कहता है, "इंग्लिश चीजों का क्या मुकाबला है जी...अंग्रेज अंग्रेज ही थे। उनके सामने यह देसी गधे किस काम के ! कहते हैं, देसी टट्टू, खुरासानी दुलतियां।"

मिनी एज

जे० एल० नंदा



मिनी (छोटी, या घटी हुई) एज (उम्र, समय, या काल) ... मिनी एज का आरम्भ हो चुका है। प्रत्येक वस्तु मिनी-से-मिनी होती जा रही है। छोटी-से-छोटी चीज में एक नहीं, अनेक गुण यों भरे जा रहे हैं, जैसे अखरोट, रीठे या कौड़ियां सेलने के शौकीन इनमें पारा, सिक्का या साख आदि भरकर हलके को भारी, पोले को ठोस और कमजोर को ताकत-वर करके इनको आम से खास बना लेते हैं। जो भी आविष्कार अस्तित्व में आता है, उसका मिनी रूप तत्काल तैयार हो जाता है ... सट रोटी, पट दाल !

साहित्यकारों ने मिनी साहित्य की रचना करके कौन-सा तीर मार लिया है ... बल्कि ऐसा सत्यानास किया है कि आम आदमी की बात छोड़िए, पढ़े-लिखे के भी कुछ पल्ले नहीं पड़ता। मिनी कविता निरी पहेली या बकवासबाजी से अधिक कुछ भी नहीं ... इससे तो आम लोगों की रची-दो-यक्तियों की बोलियाँ ही अधिक सशक्त और आकर्षक होती हैं :

तेरा घग्गरा सूत ना आवे,
सहुलियां दा पिण्ड आ गया।
(तेरा घघरा ठीक नहीं हो रहा,
ससुराल का गाव आ गया है)

यही अवस्था मिनी कहानी या साहित्य की अन्य विधाओं की है, जो मिनी बना ली गयी हैं। छोटी रचना के प्रभाव से मैं अनजान

नीबू-निचोड़ की तरह उपदेशात्मक निष्कर्ष निकालकर भारतीय दर्शन में ठोस वृद्धि की है।

“साढ़े तीन हाथ धरती तेरी है !”

पजाबी कवियों का दर्शन एक रूसी लेखक महात्मा टालस्टाय के दिल में यो बैठ गया, जैसे बरसात के दिनों में किसी गरीब की कच्ची झोंपड़ी बैठ जाए... और उसने इस शिक्षा को अपनी एक कहानी ‘हाउ मच लैंड डज ए मैन नीड’ में पेश करके उपदेश देना चाहा कि जमीन-जायदाद के लिए लोभ बढ़ाने वाले बाज आ जायें, लेकिन नाजायज कब्जे करने वाले, झोंपड़ियां गिराकर महल बनाने वाले क्या परवाह करते हैं किसी महात्मा की या उसके उपदेशों की। उनके लिए भेड़ गर्भवती हो गयी तो कोई बात नहीं, भेड़ मर गयी तो कोई फर्क नहीं पड़ता।

आज के मनुष्य का मिनी रूप बीना है। यह नस्ल अभी आम नहीं हुई। इनके दर्शन आम तौर पर मकंसों में ही किए जा सकते हैं। यह लाभ-दायक भी उनके लिए ही हैं। इनको जोकर कहकर पुकारा और सत्कार दिया जाता है। यह दर्शकों को अपनी अजीब हरकतों और उछल-कूद से आखिरी समय तक मंत्रमुग्ध रखते हैं। इनकी ओर देख-देखकर बड़े-बूढ़ों के कथनों में काफ़ी सत्यता झलकती हुई नजर आ रही है। वे कहा करते थे, “ऐसे लट्ठ-बहादुरों को भी अभी जन्म लेना है, जो लम्बे बांस से बैंगन उतारा करेंगे।” उस समय का मनुष्य डबलरोटी वाले मोमी लिफाफे में आसानी से पैक हो जाया करेगा।

ठिगने कद के एक विद्यार्थी ने अपने सुयोग्य और अनुभवी अध्यापक में पूछा, “लम्बे आदमी के धाम फायदे कौन-कौन-से हैं?” अध्यापक ने बताया, “बहुत विस्तार में जाने की जरूरत नहीं। हाँ, एक ही बात अवश्य गाँठ में बाँध लो कि अगर लंबे कद का आदमी ईश्वर न करे पगला जाए, तो लोगो के बच्चे मकान की छुडेर पर से उतार सकता है।”

सत्ययुग और द्वापर युग में आम आदमी की उम्र सैकड़ों वर्षों तक पहुँच जाती थी। ऋषि-मुनि तो असंख्य शताब्दियों तक मजे सूटते रहते थे। जंगलों या पहाड़ों के दामन में बहते पानियों के किनारे हसमुख

सवियों के साथ रास रचाने के अनाया अन्य काम-धंधा करना उनकी मान के विरुद्ध था। हमारे भाग्य में आ गया है बुरा कसियुग। इसको कर-गुग भी कहा जाता है। जो कोई काम नहीं करता, उसकी कोई पूछ-प्रतीत नहीं, बल्कि साना दिया जाता है, "काम प्यारा है, बम्म (त्वचा) प्यारा नहीं।" साधु दया सिंह 'आरफ' ने जंग मनी जरीब से नाप कर इस समय के आदमियों की उम्र सो साल निश्चिन कर दी है। बहुत कम बर्दाकस्मन इस पैमाने पर पूरे उतरते हैं...अधिकांश भाग्यवान तो पांच की दायी तरफ शून्य सग जाने पर ऐमा अपमान नमसते हैं, कि वे धर्मराज की कचहरी में मानहानि का मुकदमा दायर करने के लिए प्रस्थान कर देते हैं। युवा वर्ग महात्मा बुद्ध के मिशन पर डटा हुआ है...कहता है, "दुनिया दुखों का घर है!" दुख में हर कोई मुक्ति चाहता है, इसलिए अपना उल्लू खुद ही मीठा करने के लिए वे कोई न कोई कारनामा कर बैठते हैं या आर-मिट्टी शूलस लेते हैं...और मा-बाप के दिल को जसाकर बाकी सबको मूली पर लटका देने है। उनके लिए न होमा बांस, न बजेगी बांसुरी...हे बांसुरी वाले! यदि आपके ममय ऐसा रिवाज नहीं था, तो हमारे ही क्यों मेख ठोंक रखी है।

हमारे भोजन-मंडार में भी मिनी चीजों ने टांगें अटका दी हैं। यह छन्ने (बड़ा कटोरा) और कटोरे लोगों ने फसादों में भाग के भाद फेरी वालों को बेच दी हैं...जिनमें आम गवक (जवान) डेढ़-दो सेर गुनगुना दूध पी कर फड़कती मांसपेशियां पर गर्ब किया करते थे...और खरीद ली हैं छोटी-मोटी चीजें—मिनी टी-सेट, मिनी जग, चुटकी-भर नमकीन दाल रखने के लिए मिनी प्लेटें। मटकी में मधानी डालते समय कंगनी वाले गिलासों में, जो कद-काठ में हाथ-भर नंबे थे, आधा-विलोया या मक्खन-सस्सी पीने का रिवाज अब लगभग नम्राप्त हो हो गया है। दारू या चाय पीने के लिए छोटी-छोटी कांच की गिलासियां तो आम घरों में देखी जा सकती हैं, पर यह बड़े गिलास नहीं। इनकी अर्धों हमारे घरों में से कब का उठ गयी है। खूशी-गमी या अन्य किसी प्रकार की भी सामाजिक एकत्रता होती, तो बहुत बड़े तवे पर हाथ-हाथ-भर के प्रसादे (फुलके) पकाये जाते थे। अब मिनी एज का युग है। प्रसादे का नाम फुलका रखा

गया... फिर पूरी या कचोरी। इनके आकार और भार का अंदाजा लगाने की जरूरत नहीं... मुह की भाप से उड़ जाते हैं। शहरी लोग तो पांच-चार खाकर लवण-भास्कर चूर्ण ढूढ़ने लगते हैं, ताकि जल्दी हजम हो जायें। आम ग्रामीण और मेहनतकश लोग जिनका एक घास ही बनती है ऐसी पूरी-कचोरी, उनके पेट को गढ़ा कहना कहा का न्याय है? यह भोले-भाले लोग अगर खाने-पीने में भी सकोच, शरम या शिश्नक कर जायें, तो फिर और कौन कहेगा—“चार बार, चार बार इनका-दुधका चली आए।”

यदि मिनी एज का अटैक हमारे खाने-पीने पर एटम बम्ब की तरह हुआ है, तो पहनावे पर हाइड्रोजन बम्ब की तरह हुआ है। मिनी स्कर्ट और मिनी ब्लाउज ने शरम-हया की देवी को नगा कर दिया है। जो थोड़ी-बहुत कमर बाकी थी, वह हिप्पियो ने पूरी कर दी है। हिप्पी स्पूतनिक और राकेट युग की उत्पत्ति है। इन्होंने ऐसा कील ठोका है कि देखने वालों को बिना पिए ही चबकर आ जाता है।

मजक की प्रकृति पर आधारित जनस्पति को हमारे वैज्ञानिक मिनी-से-मिनी करने के लिए डटे हुए हैं। फमलों की कर्द किस्तो को ड्वार्फ से ट्रिपल ड्वार्फ कर दिया है। अनगिनत किस्म के पौधों को ड्वार्फ करके यह हाल कर दिया है कि वेधारे धरती के बजाय गमलों या प्लास्टिक के लिफाफों में कैद भोग रहे हैं। यदि पापल वृक्षों का भी ऐसा ही ओवर-हाल कर दिया गया, तो झूला झूमने वाली युवतियों को साधों से तैयार की गयी रंगीली रस्सियों में गुँने में फामी लेकर प्रोटेस्ट करने के लिए अखाड़े में बूढ़ पटने से गुरेज नहीं करना पड़ेगा।

मिनी टात्व, हमारी छोटी उमरी में भी आधी चाबियों के छल्ले में ममा गयी है। घड़िया अंगूठियों के नंगों में फिट हो गयी हैं। वायरलेस रिस्टदाचो में फिट हो चुके हैं। पापेट ट्राजिस्टर की तरह बोट की जेब में ममा मगने वाला टेलिविजन इंजाद हो चुका है। पेन-पिस्टल रखने वाला जब पुराने समय की बीत-पच्चीस फूट सवों बंदूकों के दर्शन करता है, तो पचरासर मोचों के लिए मजदूर हो जाता है, “इनको चलाना तो एक और रंग, उठाकर युद्ध की सभाय गणना भी दिल-गुदे का काम है।” पेन-पिस्टल को बराभात का पना उगा... मगदू... पाग पड़ा

आदमी यों ढेर हो जाता है, जैसे माँप ने डस लिया हो । इन बटूको के चलने का पता मीलों तक लग जाता था ।

बाहरी देशों की युवती हमारी तरह एक आदमी के साथ ही बघे रहना पसंद नहीं करती । जब किसी डीठ प्रेमी से छुटकारा पाना हो, साइ-प्यार में ऐसी सिगरेट पेश कर देती है, जिसमें मिनी बंब फिट होता है । सिगरेट सुलगाते ही सिगरेट-बब प्रेमी को सीधा स्वर्ग की ओर भेज देता है...और प्रेमिका किसी और का आलिंगन गर्म करने चल देती है । ऐम केसों में इरादा-करल या आत्महत्या आदि कुछ भी प्रकट नहीं होता । जामूस पाच-सात दिन बरबाद करके केस फायल कर देते हैं ।

किसी के कंधे पर रखकर बटूक चलाने वाले को हम बड़ा होशियार मानते हैं । पश्चिमी देशों में इनके भी गुरु घटाल पैदा हो गए हैं । वह अपने कमरे में ही बैठे-बिठाए लिफाफे के साथ बम पोस्ट करके भेज देते हैं । लेटर-बम के दो ही करतब हैं...यदि मोहर ठिकाने पर लग गयी, तो डाकखाने सहित डाकिया समाप्त हो जाता है...यदि लिखे हुए पते-ठिकाने पर पहुँच गया, तो खोलने वाले की कुशलता नहीं । इस मिनी बम ने हर प्रकार के बमों को मात कर दिया है । जरूरत को आविष्कार की भी जननी माना गया है...जरूरत के समय गधे को बाप बना लेने में हर्ज नहीं समझा जाता, अस्तु, ऐसे मा-बाप की संतान अभी और कुछ कर गुजरने पर तत्पर बैठी है ।

जब किसी राजनीतिक पार्टी से बावली स्त्री की तरह अपना ही बाल संवारे नहीं जाते...वह गर्व से मिनी बजट पेश करके मिनी प्लान (योजना) गढ़ देती है । मिनी सेक्रेटरियेट निर्मित किए जाते हैं । मिनी प्राजेक्ट शुरू किए जाते हैं । मिनी प्लाट लगाए जाते हैं । जिनको अफरा-तफरी पड़ी हो, उनको मिनी बमों द्वारा लाया जाता है । कड़्यों को मिनी बसों के रूट-परमिट देकर दुहा जाता है । मिनी कालोनियो में छोटे-छोटे घर खड़े कर-के कर्मचारियों को दिन में दफ्तरो में और रात को इन दबबों में मुगियों की तरह घुसाकर निश्चितता की साँस ली जाती है ।

कर्मचारी भाइयों से विनती करूंगा कि वह दिल न डाँवाडोल करें । घबराहट प्रकट न करें । मीर तक़ी "मीर" का शेर :

इन्तदा-ए इश्क है रोता है क्या,
आगे आगे देखिये होता है क्या ।

तरन्नुम से गाकर एक-दो गिलास ठंडे पानी के पी लिया करें । मिनी एज
मे जिस किसी को सुख भोगना है, जरूरतों को मिनी-माइज करने के लिए
कमर कस ले ।

हमें हमारे मेहमानों से बचाएं

जगदीश प्रसाद कौशिक



छठी श्रेणी से लेकर कालेज तक, मास्टर मिलखी राम से लेकर प्रो० दीनानाथ जी तक जितने भी अध्यापक और प्रोफेसर हमें पढ़ाते रहे, वे सभी नागरिकशास्त्र पढ़ाते समय यह ही पढ़ाया करते थे कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह अकेला नहीं रह सकता। उसे हर काम में हर समय किसी दूसरे आदमी की सहायता की जरूरत रहती है। रिश्तेदार, भाई, बहन मित्र, सब समाज के अंग हैं। यह व्याख्या उस समय तो ठीक-सी ही लगती थी, लेकिन अब जब समाज के यह ही प्राणी हमारे प्राणलेवा बनने पर तत्पर दिखाई देते हैं, तो यह कहना पड़ता है, कि मनुष्य की परिभाषा करने वाला लेखक भी यदि हमारी तरह ही समाज की मेहरबानियों का शिकार हुआ होता, तो अवश्य ही वह यह लिखता कि मनुष्य आदिकाल से जंगलों में अकेला रहता था। यदि वह अब भी सुखी रहना चाहता है, तो उसको अकेले ही रहना चाहिए। हमें हमारा कीमती जीवन आज के इस विकासशील युग में भी आदिमानव की तुलना में दुखी और कष्टों-भरा दिखाई दे रहा है।

हमारे रिश्तेदार तो आटे में मक्का ही कहे जा सकते हैं। मा-बाप हमें बहुत पहले सामाजिक प्राणी अर्थात् अनाथ बनाकर ईश्वर को प्यारे हो गये थे। भाई-बहनों के नाम पर हम सवा लाख (एकमात्र) ही अपने कुल का दीपक हैं। चाचा और मामा मां-बाप के स्वर्गवास के साथ ही 'कुछ सहायता न करनी पड़ जाए' की आशंका से किनाराकशी कर गए थे। वस इस प्रकार रिश्तेदारों में कसम खाने के लिए जोर के एकमात्र चेहरे भाई साहब हैं, जो बम्बई में अपना कोई काला-पीला घंघा करके चांदी

बना रहे है। कभी-कभार मुलाकात हो जाती है, लेकिन रिश्तेदारों की याद हमारे बिन बुलाए मेहमान, जिनमे हमारे कुछ वचपन के साथी भी है, पूरी करते रहते है। उनकी इस मेहरबानी और कद्रदानी ने हमारी ऐसी दिबरी कमी हुई है कि खुदा ही मालिक है।

हम रह सों रहे है देश के दिल दिल्ली में, लेकिन दूसरे के दिल में रहते हुए हमारे अपने दिल को दौरे पड़ने लग जाते है। सात सौ रुपया महीना तनख्वाह में मकान का किराया, अपना, अपनी धर्ममत्नी और दोनों की गलती के तीन नतीजों की रोटी और कपड़े का प्रबंध ? जरूरतें हमारा मुख बिटाती शैतान की आंत की तरह बढ़ती ही जा रही है। महंगाई में कोई क्या करे ? ऊपर से मेहमानों के चरणों की धूल हमारा कचूमर निकाल रही है।

इतवार का दिन था। हम सप्ताह-भर की पिछली थकावट दूर करने और अगले सप्ताह के लिए धूप में बिटामिन प्राप्त करने के लिए मकान की छत पर चारपाई पर लेटे हुए थे। दरवाजे पर दस्तक हुई। नीचे जाकर देखा। एक महाशय हाथ में अकबर के समय का लोहे का एक छोटा-सा टूटा टुकड़ा उठाए खड़े थे। श्वन-मूरत, शरीर की आकृति और पोशाक से बिल्कुल कमला मर्कस के जोकर लग रहे थे। दरवाजा खुलते ही बोले, "नमस्कार।" इस बम का जवाब एक छोटे-से कारतूस से ही देने की हिम्मत थी। इसलिए हाथ जोड़कर पूछा, "आइए, कहा से पधारे हैं ?" तत्काल दूसरा बम फटा, "वाह, माहब, वाह ! जो मुनते थे, ठीक ही था। कहते हैं, शायर बड़े मुनक्कड़ होते हैं। अजी साहब ! आप पिछले महीने पानीपत मुझामरे पर गए थे न ! आपको जो एक बार सुन ले, कैसे भूल सकता है ? कल यहा एक पेशी है। मोचा, दिन में कहीं नेट न जो हो जाऊं, इमनिंग मुझायरा कमेटी के सेक्रेटरी में आपका एड्रेस मिल गया था। शुशकिम्मती है मेरी कि दर्शन तो हो गए। शायरों का क्या भरोसा ? जहा लिखने का मूक बना, वहीं पर ही बैठ गए।" फिर, उनको अदर लाए, चाय बिताई और उनके गन के प्रबंध के लिए सोच में डूबने के अलावा अन्य कोई जरूरी काम अभी दिखाई न दिया। वह चाय पीकर कहने लगे, "मैं जरा फुम-फिर आऊं। आजकल दरवाइ से रहा हू। हकीम

ने रात के खाने में देसी धी का हलवा बताया हुआ है। तकलीफ तो जरूर होगी, लेकिन मैं अपने प्रिय मित्रों से खुलकर बातचीत कर लेने का आदी हूँ। बीमारी न होती, तो दाल-फलका ही चस जाना था।”

वह चले गए और हमने जैसे-तैसे सारा प्रबंध किया। रात को वह हमारे न चाहते हुए भी हमारी गजलों सुनते रहे। कोई एक बजे हमारा पोछा छोड़ा। उनको अपना बिस्तरा देकर स्वयं स्टोर में जमीन पर लेट-कर फटे कंबल में रात काटी। मुबह वह नाश्ता करके विदा हो गए और उनकी सेवा के बदले हमें पच्चीस रुपये की यूक लग गई। सोचते थे, न हम शायर होते, न यह घला गले पड़ती।

२५ जनवरी को दफ्तर जाने लगे, तो श्रीमती जी ने ‘आज की ताजा खबर’ वाले अखाबार के हाकर की तरह खबर सुनाई, “तनखावाह का देहात हां चुका है। कल २६ जनवरी है, कोई मेहमान रूपी ‘राक्षस’ न आ जाए, इसलिए रुपये-पैसे का प्रबंध करके आना।” ‘अलखामोशी नीमरजा’ चुपचाप दफ्तर चले गए। चार बजे तक फाइलो ने हमारा खून चूसा। हमन उनका अर्क निकाला। चलते समय खजाची से सौ रुपये एडवांस में लिए और साग-सब्जी खरीदकर घर आ गए। दरवाजा खोलते ही पत्नी का कहा हुआ शब्द ‘राक्षस’ तीन रूप धारण किए एक चारपाई पर बैठा हुआ दिखाई दिया। यह तीन मूर्तियां थीं—हमारे पैदाइशी शहर मलेर-कांटले के तीन महापुरुष, जिनसे हमारी बचपन से थोड़ी-बहुत जान-पहचान थी। वैद्य दुखभंजन सिंह, पंडित श्याम सुंदर और मिया नूर। हमने देखते ही तीनों ने एकदम उठकर हमें यो बांहों में लपेट लिया जैसे धृतराष्ट्र ने भीम को लपेट लिया था। हमारी दम घुटती देह यो महसूस करने लगी कि हमारे शरीर-रूपी लोकतंत्र को ‘राष्ट्रीय एकता’ ने जकड़ लिया है। हमारे कानों में झनझनाहट-सी होने लगी जैसे कोई कह रहा हो, “हिंदू मुस्लिम सिख ईसाई, आपस में हैं भाई-भाई।” खैर, उनके बाहुपाश से छुटकारा मिला, तो वैद्य जी बोले, “यार ! अच्छा दिल्ली आया है ? यार-.. दोस्तों को बिलकुल भूस ही गया है ! लेकिन हम तो तुम्हें नहीं भूले। जंग-तैसे अपने लगोटिए यार का पता ढूँढ ही लिया है।” “वस, समय नहीं मिलता।” कहकर हमने सब्जी वाला थैला श्रीमती जी को थमाते हुए,

पूछा, “चाय-पानी पिलाया है कि नहीं?” “इससे पहले कि पत्नी कुछ बोले, पं० श्याम सुंदर कहने लगे, “तेरा इतजार कर रहे थे। अबले तो चाय-पानी रोज ही पीते है।” इतनी देर में आठ घंटे के बिछड़े हुए हमारे बच्चे भी हमारे पास आ गए। मिया नूरु ने प्यार का नाटक रचाते हुए एक का मुख चूमा और घेले से भूगफलियों का लिफाफा निकालकर काके को धमाते हुए कहने लगे, “कैसा शहर है समुरी का। किसी ने ऐसे निकम्मे रास्ते पर डाल दिया कि कहीं कुछ काम की चीज मिल ही नहीं सकी।” पत्नी की भविष्यवाणी अच्छी होने के कारण वह हमें ज्योतिपी प्रतीत होने लगी थी। खैर, जलपान किया गया। रात को सामर्थ्यानुसार खान-पान की सेवा भी की। सिनेमा दिखालाया। अपनी चारपाईयाँ-बिस्तरे उन्हें दिए। स्वयं मारा परिवार रसोईघर में घुसकर फटे कंबलों में सोने-जागने का नाटक सारी रात खेलता रहा। २६ जनवरी आई। जशन दिखलाए। लालकिला, इंडिया गेट, बिरला मंदिर, गुरुद्वारा शीशगंज आदि के दर्शन करवाए। रात को फिर सिनेमा में डेरे लगाए। २७ जनवरी को भोजन खाकर यह त्रिमूर्ति विदा हुई। इधर यह त्रिमूर्ति हमारे रैन-अमेरे से विदा हुई और उधर सी का नोट हमारी जेब से विदा हो गया।

पिछले दिसंबर में एक पत्र मिला। खोलकर देखा। बर्बई से जौलू के भाई का था। लाख-लाख धन्यवाद किया, चलो, माद तो किया। लिखा था, “प्यारे जीजा जी! मुद्दत से आपका कोई पत्र नहीं मिला। (जैसे स्वयं पत्र लिखता-लिखता थक गया हो) यदि कोई नाराजगी हो तो क्षमा करना। एक कष्ट दे रहा हूँ। मेरे एक जिगरी दोस्त अपने बच्चों समेत दिल्ली आ रहे हैं। उनका इरादा तो किसी होटल में ठहरने का था, लेकिन मैंने कहा, अपना घर होते हुए होटल का क्या मतलब? इसलिए उनको मेरा रूप ही ममझना। बच्चों को प्यार, बहन जी को नमस्ते!” श्रीमती को पत्र सुनाया। वह मुनकर कुप्पा हो गई। “देखा, आप चाहे कुछ भी कहे, लेकिन मेरा भाई हमें भूलने वाला चोड़ा ही है।” हम सोच रहे थे, उसने हमारे घर को होटल ही तो समझा है। खान-पान, चारपाई-बिस्तरे की सेवा सब मुफ्त। साला न हुआ, साट साहब हो गया। यह फौज कब हमला कर दे, क्या पता? यह सोचकर अपना कमरा धासी किया। अट्रोस-मट्रोस

से दो चारपाइया-बिस्तरे मांगे। साबुन-नेस, तौलिये आदि का प्रवध किया। सारे का मित्र जो हुआ।

एक दिन अचानक दफ्तर में टेलीफोन की घंटी बज उठी। रिसेप्शनिस्ट ने आकर सूचना दी, "आपको स्टेशन में कोई आदमी बुला रहा है," खोला उठाया, 'हेलो-हेलो' हुई। आवाज आई, "मैं बर्बई से आया हूँ। आपको मिस्टर राज का पत्र मिला गया होगा। कृपया स्टेशन पर आ जाए।" खोरमजारिए, रिश्ततखोर और भगलर पुलिस का नाम मुन क्या धबराते होंगे, जितना हम धबराए। जोरू के भाई का दोस्त! हुबम अदूली (अवज्ञा)? तोबा! तोबा!! रहना कहाँ है? बाकी समय की छुट्टी ली। स्कूटर लिया, और स्टेशन की ओर घस दिए। वेटिंग-रूम में हमारी घर-रुपी छावनी पर हमला करने के लिए सामान बोधे थे। औपचारिक नमस्ते आदि हुई और फुसी से सामान उठवाकर स्टेशन से बाहर टैक्सी में रखवाया। सारे के दोस्त, उनकी पत्नी, दो बच्चे। पाँचवें हम स्वयं। 'यहाँ में परमेश्वर' कहावत के अनुसार पाँच प्राणी टैक्सी में बैठकर घर आ गए। दोस्त ने उतरकर जेब में से सौ का नोट निकाला। टैक्सी वाले ने नोट देखकर कहा, "बाबू जी, बोहनी ही आपकी की है। सौ का बकाया अभी कहाँ?"

मेहमान हमारे मुँह की ओर देखने लगे। हमने कहा, "कोई बात नहीं।" और पंद्रह रुपये अपनी जेब से निकालकर टैक्सी वाले को बिदा किया। बाकी का सारा दिन मेहमानों की जरूरतें पूरी करने और खान-पान में बिताया। पत्नी, 'मेरे भाई का अपमान न हो', नायद इसलिए ही इन मेहमानों की सेवा में विशेष रुचि दिखा रही थी। दो सज्जियों, दाल, हलवा, पूरी, सलाद न जाने और क्या-क्या उनको खिलाया। मेहमान भी बड़े होशियार थे। सिगरेट मगवानी हो, तो सौ का नोट। पान की जरूरत हो, तो सौ का नोट। वह सौ का नोट तो न टूटा, पर अगली सुबह तक हमारी कमर अवश्य टूट गई। पूरे साठ रुपये खर्च हो गए।

दूसरे दिन हमने दफ्तर जाते समय उनका प्रोग्राम पूछा। बोले, "बच्चे तो घर ही रहेंगे। हम दोनों बाहर जाएंगे। शाम का खाना जल्दी बना लेना। पिक्चर का प्रोग्राम है।" बच्चे सारा दिन श्रीमती जी को

कठपुतली की तरह नचाते रहे। शाम को खाना खाकर पिक्चर की तैयारी हुई, जिसमें हम सबको भी शामिल किया गया। टैक्सी, टिकटें, वापसी। उनका मौ का नोट गद्दी-सलामत उनकी जेब में था। हमें पचास का चूना लग गया।

तीसरे दिन दोनों पति-पत्नी फिर बाहर गए। श्रीमती कमरा साफ करने गई, तो देखा, बिस्तरों के नीचे केले के छिलके और सेबों के बीज पड़े हुए मिले। हमने सोचा, मौ का नोट तो सही-सलामत है, फिर यह माल कहाँ से आ गया? शाम को श्रीमती जी ने बताया, “दोपहर को खाना खाकर दोनों कमरे में बातें कर रहे थे। मैं रसोईघर से बाहर गई, तो सुना। आदमी कह रहा था, ‘यह भी कोई जिदगी है। न काम का मकान, न काम का खाना, औरत ने उत्तर दिया, ‘बेचारा मामूली बलक ही तो है।’ हमने माथे पर हाथ मारा, ‘बकरी जान से गई, खाने वाले को स्वाद न आया!’ ईश्वर का कोटिशः धन्यवाद किया, जब चौथे दिन उन्होंने जाने का प्रोग्राम बना लिया। हमने फिर स्टेशन तक सेवा की। उनका मौ का नोट उनकी जेब में, हमारे पंद्रह रुपये टैक्सी वाले की जेब में थे।

एक दिन दफ्तर से घर आए, तो पत्र-पत्रिकाओं के साथ आई डाक में एक और कार्ड मिला। पढ़कर दो मिनट के लिए तो सोचने लगे कि यह मामा जी कौन हैं? हमारे एकमात्र मामा हैं, और वह हमसे यों दूर रहता है, जैसे हम कोढ़ के रोगी हों। कुछ देर सोचने के बाद धयाल आया, ठीक है, भाता जी की अंत्येष्टि पर यह महाशय भी आए थे। लिखा था, “प्यारे भाजे! जीजा जी और बहन रामदेवी के स्वर्गवास के समय ही मिलने का अवसर मिला था। तू शायद न जानता हो, मैं रत्ना ‘राम (तेरे सगे मामा) की बूआ के पुत्र के चाचे का सडका हूँ। कई बार दिल्ली आने का विचार किया, पर ससुरे परिवार के चक्करों में घूमता रहा हूँ। तेरा छोटा भाई बड़ा निकम्मा निकला है। तेरी मामी और मुझे तो कुछ ममज्ञता ही नहीं। छोटे बहन-भाइयों को भी मार-कुटाई करता है। दिन-भर आवारागर्दी के मिवा अन्य कोई काम नहीं करता। आठवीं में फेल होकर बेकार फिर रहा है। मैं तेरे पास लेकर आऊंगा। दिल्ली में तो

कोई नौकरी मिल ही जाएगी। साथ ही तू तो अफसर लगा हुआ है। आजकल तगड़ी सिफारिश के बिना कौन पूछता है।" पत्र पढ़कर हसी भी आई और रोना भी। हंसी नये मामा जी की जानकारी पर और रोना एक अन्य मुसीबत गले पड़ने पर। बात आई-गई हो गई, लेकिन किस्मत के लिखे को कौन मिटाए ! पत्र के बाद चार दिन ही बीते थे कि हमारे मामा जी अपने साहबजादे को साथ लेकर हमें सेवा का मौभाग्य प्रदान करने के लिए आ पधारे ! रात को हमारी तारीफों और लाड़ले की बुराइयों के पुल बांधते रहे, "काका ! रिश्तेदारी मिलने-जुलने और लेने-देने से ही होती है। मुझे खुशी है कि तुमने खानदान का नाम जमका दिया है। मेरी बहन और बहनोई की आत्माएं स्वर्ग में खुशियां मना रही होंगी।" फिर अपने साहबजादे को डांटते हुए बोले, "नालायक ! एक तुम हो कुलकलंकी ! यह तुम्हारा भाई लाखों में एक है। कुत्ते ! इसका पल्लू पकड़ेगा, तो पार हो जाएगा।" मामा जी उसको कोई नौकरी दिलवाने की आज्ञा देकर चौथे दिन चलते बने। हमें गले पड़ा ढोल बजाना पड़ा। अपने दफ्तर में ही अफसरों की याचनाएं करके मामे के पुत्र को खपरासी लगवा दिया। अपनी बदनामी से बचने के लिए अपना एक सूट भी उसे दे दिया। खान-पान और रहने के लिए तो हमारी धर्मशाला खुली हुई ही थी।

एक दिन दफ्तर वालों ने एक हजार रुपये बैंक में जमा करवाने के लिए उसे देकर भेजा। एक, दो, तीन, आखिर चार वज गए, लेकिन उसके नहीं आना था, न आया। हमारी जान कुड़की में आ गई। जिम्मेदारी जो हमारी थी। जेल का दरवाजा दिखाई देने लगा। रो-पीटकर अपने मामूम और निर्दोष बच्चों के भविष्य का वास्ता ढालकर अफसरों की याचनाएं की। आखिर सौ रुपये महीना हमारी तनख्वाह में से काटने का फैसला हुआ। मामा जी को कई पत्र लिखे, लेकिन न हमारे पत्र का उत्तर आया, और न ही मामे का पुत्र ! अब हमारी किस्में कट रही हैं। प्रिय पाठकगण ! आप ही बताइए कि यदि हम यह कहें कि 'हमें हमारे मेहमानों से बचाए', तो बुरा क्या है ?

मेरी तोबा, मैं कवि-सम्मेलन नहीं कराऊंगा

बलीप सिंह भूपाल



कठिन घड़ियों में से गुजरकर सीधी राह पर आने वाले दर्जनों आदमियों से आपने ऐसी कसम अवश्य सुनी होंगी :

मेरी तोबा : मैं शराब नहीं पीऊंगा ।

मेरी तोबा : मैं जुआ नहीं खेलूंगा ।

मेरी तोबा : मैं जेबें नहीं काटूंगा । आदि-आदि ।

लेकिन ऐसी कसम आपने कम ही सुनी होगी :

मेरी तोबा : मैं कवि-सम्मेलन नहीं कराऊंगा ।

वास्तव में यह मेरी अपनी तोबा है, लेकिन मैं यह तोबा क्यों कर रहा हूँ इसकी पृष्ठभूमि में हास्यपूर्ण और हास्यहीन घटनाओं की लम्बी शृंखला है । सीजिए, इनमें से कुछ एक घटनाएं सुनने के लिए आप भी तैयार हो जाइए ।

तेरहवीं कक्षा में पढ़ते हुए मेरी शादी हो गई थी, जिसका अब सिलवर-जुबली वर्ष चल रहा है । बी० ए० पास करते ही घरवालों ने घोषणा कर दी, “अब हमारा पीछा और घर दोनों छोड़ दो । जहाँ मर्जी हो, जाओ । कमाओ और खाओ ।” लेकिन जनाब, इतनी जल्दी ! एकदम नौकरी तलाश करना विवाह करवाने जितना आसान काम तो नहीं था । इसलिए रोटी की चिंता हो गई । अकेला आदमी ऊंट की पूछ जैसा होता है, दोस्तों-रिश्तेदारों और सगे-सबधियों के यहाँ एक-एक रात भी बिताता, तो मुफ्त-मुफ्त में दो-ढाई वर्ष आसानी से गुजर सकते थे । नौकरी ढूँढ़ने की कोई जल्दी नहीं होनी थी, न चिंता । लेकिन अब कर्मों वाली

(पत्नी) को साथ-साथ घसीटते फिरना न मुझे अच्छा लगता था और न ही उस बेचारी को । हमे शेरों-शायरी का चस्का तो बचपन ही से था । अनेक कविजन हमारे ज़िगरी दोस्त थे । उस समय देशभक्ति का आन्दोलन पूरे योवन पर था । लोग कवि-सम्मेलन को बड़ा पसंद करते थे । इसलिए हमे विचार सूझा, क्यों न कवि-सम्मेलन करवाए जाएं ? दम प्रकार हमारा स्टेज-मेन्टरी बनने का शौक भी पूरा हो जाएगा ।

एक दिन बैठे-बिठाए अपना हिसाब लगाया, यदि एक कवि-सम्मेलन की औसत चार हजार रुपये की टिकटें बिकें, तो सारे खर्च निकालकर कम-से-कम दो हजार रुपये आमानी से जेब में आ सकते हैं । वर्ष-भर में बारह कवि-सम्मेलन, चौबीस हजार रुपये ।

और यदि इस प्रकार पाच वर्ष भी निर्विघ्न लग जायें, तो एक लाख बीस हजार रुपये छलाने लगाते हुए आएंगे । हीन लगे न फटकड़ी, रग चौड़ा आए । तब भाव बहुत मस्ते थे । सोचा, धारे-न्यारे हो जायेंगे । हमारे पास क्या नहीं होगा । कोठी, कार, टेलीफोन, नौकर-चाकर और जीवन की मुह-मांगी सब सुख-सुविधाएं । बीबी को साड़ियां-सूटो और गहनों से लाद देंगे । हाई सोसाइटी में मूव करेंगे । बड़े-बड़े मंत्रियों के साथ झिनर होंगे । फोटो उतारे जायेंगे । फिल्मी रीलें तैयार होगी । बाह, भई, बाह !

यह सोचते ही हमने तुरंत पहले कवि-सम्मेलन का विज्ञापन छपवा दिया । फिर दूसरा कवि-सम्मेलन, फिर तीसरा कवि-सम्मेलन । और पच्चीस वर्षों में असंख्य कवि-सम्मेलन करवाये, लेकिन हमारी आशाएं-आकांक्षाएं अघूरी ही रही । हमारे साथ तो लगभग यही हुआ है :

न खुदा ही मिला, न विसाले शनम,
न इधर के रहे, न उधर के रहे ।

पहले कवि-सम्मेलन में, हमने अपनी समझ से काफी प्रसिद्ध कवि बुलाये । स्टेज पर तीन-चार कवि तो खूब जमे । लगा, हमारी अच्छी धाक बैठ रही है, लेकिन अगले कवि ने एक थड़ा ही ऊट-पटांग शेर इस

कुएं में जाता डोल भला, रे डोल भला

इस पर धूम बाह-बाह हुई। क्या मिसरा-ए-अव्वस है जी। और जब उसने मिसरा-ए-तानी यानी दूसरा जोड़कर शेर कहा

कुएं में जाता डोल भला, रे डोल भला

कुएं से आता डोल भला, रे डोल भला

तो दूर फिटे मुंह (लाखों धिक्कार!) 'क्या बकवास है जी' की आवाजें आनी शुरू हो गयी। हमारे हाथों के तोते उड़ने लगे। झटपट हमने अगले कवि को बुला लिया। उसने शेर के पहले मिसरे से ही श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। हमारी जान में जान आई। कहने लगा :

इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर

श्रोताओं में से दाद आई, "बाह भई, बाह। क्या काफिया रदीफ है। बहुत बढ़िया प्रेमक अलंकार पेश किया है। अत्तर-अत्तर, अत्त-अत्तर, अत्तर", और उन्होंने दूसरा मिसरा सुनने के लिए कान खड़े किये। कवि बोला :

इकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर, चौहत्तर,

पंचहत्तर, छिहत्तर, सतत्तर, अठहत्तर

और उकताए हुए श्रोताओं ने गले-सड़े अड़े, टमाटर और चपल्ले दे मारी। हम स्टेज-सेक्रेटरी थे और सबसे आगे बैठे हुए थे। इसलिए बहुत कुछ हम पर ही बरसा। गले-सड़े अड़े और टमाटरों ने क्या काम आना था, चपल्ले भी एक-एक पैर, और अलग-अलग नम्बरो की होने के कारण किसी काम न आ सकी। बेहद शोरगुल मच गया। कुरसिया फेंकी जाने लगी और अंत में हमें मजबूरन कवि-सम्मेलन बीच में बंद करना पड़ा। खिन्नावस्था में हमने निश्चय किया कि कम-से-कम उन महीनो में कवि-सम्मेलन नहीं कराया जाएगा, जब अंडों और टमाटरों के गलने-मड़ने का सीजन होगा।

एक अन्य कवि-सम्मेलन में लगभग पांच हजार श्रोताओं का मगूह था। बड़ा उत्साह मिला, चलो, पांच हजार में से यदि हजार मुफ्त घोरे,

सिफारिश वाले, रिश्तेदार और कवियों के चेले-चांटे निकाल भी दें, तो बाकी प्रत्येक थोता ने कम-से-कम यानी दो रुपये वाली टिकट भी ली हो, तो भी सोचा आठ हजार कमाया जाएगा और खर्च जितना बर्जो शाहाना करें, तीन हजार रुपये में ज्यादा नहीं हो सकता। इम प्रकार सीधा पांच हजार बच जाएगा। खुशी से फूले न ममाने हुए हमने टिकट वाले बनक को बिक्री के बारे में पूछा, तो वह खिन्न-मे म्वर से बोला, “केवल ४५० रुपये के टिकट बिके हैं।” सुनकर हमारी आंखों के सामने सारे नाचने लगे। पैरों तले से जमीन खिसक गई। गजब खुदा का। इतने मुपतखोरे ! वे न जाने कौन-सी सुतेमानी टोपिया पहनकर प्रबधकों की आंखों में धूल झांकाकर पंडाल में आ घुसे थे। घोर उदासी की अवस्था में जी घाहा बि बहाना गढ़कर कवि-सम्मेलन न करवाने का ऐलान कर दें, लेकिन फिर सांचा, फही मुशामरे के बजाय मुजाहिरा ही न हो जाये। इसलिए दिल पर पत्थर रखकर कवि-सम्मेलन शुरू करवा दिया। दुकानदारों के घिल चुकाने में हमारा घर बिक गया था, लेकिन शौक का कोई मूल्य नहीं होता है। सो, हमने भी हिम्मत न हारी। कवि-सम्मेलन करवाने का अपना चस्का जारी रखा।

एक कवि-सम्मेलन में कवि ने अपनी आजाद कविता यों शुरू की :

नयन तेरे गोरी के,
जैसे भूरी भैंस के सींग,
हवा चली झट जायेंगे,
गुजरे जिस राह से ?

थोताओं में हंगामा मच गया। कहने लगे, इसके अर्थ क्या हुए ? कवि और मैं, हमने बहुतेरा समझाया, “भई, ऐसी कविताओं के प्रकट अर्थों की ओर नहीं, गुप्त अर्थों की ओर देखा जाता है...” लेकिन लोग न माने। तब कवि ने स्वयं को संभालते हुए एक अन्य कविता जबानी सुनानी शुरू कर दी, जो उसे पूरी तरह याद नहीं थी। आकाश की ओर मुंह उठाकर बड़े कविभावा श्रंखल में बोला, अर्थं किया है -

ए चाद-सितारो...
 मैंने कहा जी,
 ए चाद-सितारो...
 हां जी, शेर है जी...
 ए चाद-सितारो...

बीर आगे उसको कुछ याद नहीं आ रहा था। श्रोताओं में से एक ने खीझकर एक पत्थर मारा। तब मौला-शनास कवि ने इस प्रकार शेर पूरा कर दिया :

ए चाद-सितारो
 मया करते हो प्यारो
 यों पत्थर तो न मारो

इस पर थोड़ा-सा हास्य का वातावरण बन गया, लेकिन इसी कवि-सम्मेलन की एक अन्य आजाद कविता मुलाहिजा हो :

मेरे घर के पास ही
 न भौंकती है, न बोलती
 छोट-छोटे पारंगतों पर
 भार अपना तोलती
 काली-सी, दुबल-सी,
 कुतिया निगाहिये पीर की
 मैं पूछता हूँ दुनिया के लोगो !
 भोलो, डाकुओ, लुटेरो, चितन के ठेकेदारो
 जल्दी करो, बोलो, बताओ, यह किसका प्रतीक है ?

इस पर न केवल श्रोताओं ने ही हंगामा किया, बल्कि कविजन भी आपस में गुत्थम-गुत्था हो गए। कहने लगे, “यह नामुराद कविता लिखने लगे हैं। सालो, इससे अच्छा था, बूट-यालिंग कर लिया करो।”

एक बार एक कवि महोदय केवल इस बात से हमारे साथ नाराज हो गए, भई, मैंने कवियों के स्वागत के समय उनको हार दूसरों की अपेक्षा

थोड़ा-सा छोटा डाल दिया था। गुस्से में छटपटाते हुए वह कवि-सम्मेलन में से वाक-आउट कर गए थे। अपनी फीस वह एडवांस ले चुके थे। मैं करता, तो क्या करता ?

एक अन्य अवसर आया, जब मैं बहुत बढ़िया क्रम से कवियों को बुलाता जा रहा था। सोचा, वैराइटी बनी रहने में श्रोताओं की रुचि बनी रहेगी। सातवें नम्बर पर मैंने जिस कवि का नाम बोला, वह कुछ इस प्रकार बड़बड़ाता हुआ स्टेज पर से छलाम मार गया, “मैं इन छह कवियों से सीनियर कवि हूँ। यह तो मेरी चिलमे भरते रहे हैं। आपने मुझे सातवें नम्बर पर बुलाकर मेरा बड़ा भारी अपमान किया है। मैं तो सोचता था, भई, उद्घाटन की कविता मुझसे पढ़वाई जाएगी। दूर फिटे मुह (धिक्कार), ऐसे प्रबंधकों के स्टेज-सेक्रेटरी पर !” फीस उन्होंने भी अग्रिम ले ली थी। मैं इतका भी क्या डक्का मड़क से नीचे उतार देता ?

इस प्रकार प्रधानगी करवाने के लिए शोर। स्टेज पर कवियों को आगे-पीछे बिठाने पर हंगामा। सेवा करते समय शोर। विदाई समय भी हंगामा। और तो और, यदि किसी कवि से कोई आटोग्राफ न लेता, तो वह मेरे गले पड़ जाता। कहता, “आपने लोगों को इस प्रकार क्यों नहीं सिखाया, भई वह मुझसे आटोग्राफ लेते।”

मैंने क्या कमाया ? मुझे अपनी एक गजल के दो शेर याद आ रहे हैं :

मादी इस जगत में आकर,
कमाया कुछ नहीं, केवल गंवाया
उसतम-गुलतम इस जगत में
मुझे जीना रास न आया।

और अब असफल अनुभवों की पच्चीसवीं गांठ के शुभावसर पर आपके साथ यह भेद साझा करने में मुझे कोई संकोच अनुभव नहीं होता कि कार, कोठी, नौकर-चाकर तो एक ओर रहे, मैं अपना पुस्तनी खस्ता-हाल मकान भी बेच चुका हूँ। बीबी सख्त नाराजगी और निराशा की अवस्था में बच्चों की सबी कतार मेरे लिए छोड़कर मायके की जाने की

घमकिपा देती रहती है, और इधर हमारी दुरवस्था को देखकर कोई छोटे-से-छोटा आदमी भी मेरे साथ बात करने से कन्नी काटता है। जो कहते थे, "रहेगे दूध बनकर, पानी से भी पड़ गए पतले"। नीसी छतरी वाले का कोटिश. घन्यवाद है, भई छोटी-मोटी नौकरी मिल गई थी, जिससे केवल दाल-रोटी ही चलती है।

और साधियो, अब मैं बिलकुल थक-हार गया हूँ। सद्यपति बनने के सपने छोड़ दिए हैं। इसलिए स्टाम्प-पेपर पर लिखकर ऐलान करता हूँ, "मेरी तोबा ! मैं कवि-सम्मेलन नहीं करवाऊंगा।"

निमंत्रण-पत्र मिलने के बाद

बलीप सिंह जुनेजा



कहते हैं, “बिना बुलाए तो भगवान के घर भी नहीं जाना चाहिए”, यदि अपने-आप चले जाएं, तो लोग उलाहने देते हैं, “सदी न बुलाई, मैं लाड़े की लाई” (पंजाबी कहावत)। यही कारण है कि आजकल छोटे-से-छोटा फंक्शन हो या बड़े-से-बड़ा, मेजबान अपने मेहमानों को बाकायदा लिखित रूप में निमंत्रण-पत्र भेजता है। चाहे किसी का जन्मदिन हो या मरण-दिन। मगाई हो या विवाह। बिल्डिंग की नीव-पत्थर रखना हो या गृह-प्रवेश हो। स्कूल या कालेज का पुरस्कार-वितरण समारोह हो या पुस्तक-विमोचन समारोह। कोई गोष्ठी हो या सेमीनार। बात क्या, निमंत्रण-पत्र भेजना और प्राप्त होना बहुत जरूरी है। यों जबानी चाहे आप कितनी बार कहें, लेकिन निमंत्रण-पत्र मिले बिना मेहमान को यकीन-सा नहीं आता।

कहते हैं, आग का जला छाछ फूंक-फूंककर पीता है। एक बार हमने अखबार में एक समारोह का विज्ञापन पढ़कर उस समारोह में जाने की गलती की। वहां जाकर हाल में सबसे पहली कतार में बैठ गए। प्रबंधकों को बहुत श्रोताओं के आने की आशा नहीं थी। जब श्रोता आशा से अधिक आ गए, तो प्रबंधकों ने चेकिंग शुरू कर दी और बिना निमंत्रण-पत्र के आए हुए सभी व्यक्तियों को हाल से बाहर निकाल दिया। उस समय मे हमने कसम खाई कि जब तक औपचारिक रूप से निमंत्रण-पत्र न मिले, हमें घर से बाहर कदम नहीं रखना।

आज भी जब मैं दफ्तर से घर पहुंचा, तो मेरी डाक में पाच-छह निमंत्रण-पत्र आए हुए थे, क्योंकि अगले सप्ताह तीन छुट्टियां एक साथ

आ रही थी। इसलिए लोगों ने छुट्टियों का लाभ उठाते हुए अपने कार्यक्रम तय कर लिए थे। मेरे लिए यह स्थिति बहुत ही कठिन थी कि किम निमंत्रण-पत्र को स्वीकार करूं और किसको नजरअंदाज कर दूं। चाय का प्याला पीते हुए निमंत्रण-पत्रों पर सरसरी-सी नजर डालना शुरू की। पहला निमंत्रण-पत्र काले हाशिये वाले कांड का था, यह तो किसी के मरने की खबर है। हैं ! यह तो मेरे उस शहर का कांड था, जहां से मैं पिछले साल बदलकर आया था। बड़ा अफसोस है। नौजवान आदर्शों की कुसमय मौत हो गई है। चलो, ईश्वर की मर्जी यही है। मेरे वहां जाने से क्या अंतर पड़ जाएगा। मरने वाला तो बेचारा मर गया। इतनी दूर जाने के लिए पचास रुपये आने-जाने पर जाएंगे। चलो, छोड़ो। अफसोस की घिट्ठी लिख देंगे।

दूसरा निमंत्रण-पत्र उठाया, तो यह विवाह का कांड है। मेरी घर-वाली की भाभी की भांजी का विवाह है। यह भी खर्च आ पड़ा है।

“मैंने कहा, सुनती हो !” मैंने अपनी पत्नी को आवाज दी, जो रसोईघर में सब्जी काट रही थी।

“हां, बताइए जी !”—मेरी पत्नी हाथ में चाकू पकड़े आकर कहने लगी।

“यह तुम्हारी भाभी की भांजी के विवाह का निमंत्रण-पत्र है।”

“फिर क्या सलाह है आपकी ?”

“ठहर जाओ। सोचकर बताते हैं। अगर वहां न जाया जाए, तो कोई हर्ज न होगा !”

“हा जी, मेरे रिश्तेदार आपको किसलिए अच्छे लगेंगे !”—उमने भीहें चढ़ाकर उलाहना दिया।

“यह बात नहीं। देख लो, लड़की का विवाह है। दो सौ रुपये कम-से-कम लग जाएंगे और तुम्हारी साड़ी इस बार फिर रह जाएगी।”

“जैसे आपकी मर्जी हो, करें !”—इतना कहते हुए उसने अपनी सहमति-सी दे दी।

“बाद में मिलें, तो कह देंगे, आपका कांड नहीं मिला था। इतनी सबी रिश्तेदारी नहीं निभाई जाती।”—कहते हुए मैंने अगला कांड उठा

लिया। यह एक दोस्त के लड़के के जन्मदिन का था।

“लो, यह भी खर्च वाला काम ही है। जन्मदिन पर जाएंगे, तो क्या खाली हाथ जाएंगे?”—मैंने दलील दी।

“यों कीजिए, बघाई का तार दे देते हैं!” मेरी पत्नी कहने लगी।

“हां, यह तुमने लाख रुपये की बात कही है। यों लगता है कि तुम पहले से कुछ अधिक ही समझदार हो गई हो।”

अगला निमंत्रण-पत्र उठाया। यह एक साहित्य-सभा की ओर से करवाए जा रहे कहानी-दरबार में शामिल होने के बारे में था। “छोड़ो जी, लेखक तो भूले-मंगे होते हैं। चाय का प्याला पिसाकर चलता करते हैं। और कहेगे, कहानी-दरबार करवा रहे हैं।”

आह, अगला कांड! वाह क्या कहने! शिक्षा विभाग की ओर से गोष्ठी करवाई जा रही है। थोता के रूप में पहुँचें। एक सौ रुपया मिलेंगे। “यह हुई न कोई बात!”

“सुनती हो! मैं तो अगले सप्ताह जालधर जा रहा हूँ। मेरा सूट प्रेस करवा देना। यह पकड़ो बाकी के निमंत्रण-पत्र। रख छोड़ो कहीं। सुबह अंगीठी में ईंधन के काम आएंगे।” और बाकी के निमंत्रण-पत्र मेज से उठाकर मैंने पत्नी के हाथ में धमा दिए।

पुस्तक-विमोचन समारोह

जसवन्त सिंह कलवी



कहते हैं, विधवा तो वैधव्य बिता लेनी है, लेकिन छोटे (कंगारे) उसे वैधव्य काटने नहीं देते। यह बात बिलकुल ठीक लगती है। कागज काले करने का शौक हमें शुरू से ही रहा है। दोस्तों-मित्रों के बहकाने पर हमने धीरे-धीरे कुछ-न-कुछ पत्र-पत्रिकाओं को भेजना शुरू कर दिया। शुरू-शुरू में कुछ रचनाएं छोटे सिक्के की तरह वापस भी आईं, लेकिन हमने हौसला बुलंद रखा। सोचा, अभ्यास रूपी चप्पू के सहारे कभी तो हमारी नाव भी किनारे लगेगी। बाबा फरीद की चेतावनी के बावजूद, काले लेख लिखते चले गए और लिफाफों में बंद कर-करके संपादकों पर गोलाबारी करते रहे। आखिर कुछ-न-कुछ रंग निखरना शुरू हुआ, क्योंकि संपादकों को खुश करने के लिए हमने सारे दांव-पेच इस्तेमाल किए। उनके संपादकीय के गुण-गान किए। पत्र-पत्रिकाओं के चंदे भिजवाए। एकाध रचना छपनी शुरू हो गई। जब कोई रचना छप जाती, हमें यों प्रतीत होता, जैसे दुनिया-भर की सारी दोस्त हमें ही मिल गईं हो। वह रचनाएं हम उत्साह से मुफ्तखोरे दोस्तों को दिखाते। कई तो पढ़ने के लिए ही माग लेते, जो गंगा गई हड्डियों की तरह फिर वापस नहीं लौटती। धीरे-धीरे हमारी गिनती लोक-लेखकों में होने लगी।

दोस्तों ने (सही अर्थों में दुश्मनों ने) हमें परामर्श दिया कि प्यारे, अब तुम्हें अपनी रचनाओं को पुस्तक-रूप देना चाहिए। पुस्तक छपने पर ही लेखक चर्चा का विषय बनता है और प्रतिष्ठा की ओर कदम उठाता है।

बस जी, हमारे दिमाग में यह कीड़ा कुलबुलाने लगा कि किसी-न-

किमी प्रकार हमारी भी पुस्तक छपे और हमारा नाम भी नानक सिंह, गुनबकग सिंह की तरह चमक उठे। अस्तु, हमने झटपट पांडुलिपि टाइप करवा ली। फिर अच्छे-अच्छे स्थापित लेखकों, प्रोफेसरों, डाक्टरों के साथ जान-पहचान बढ़ाने के लिए अपनी जेब हसकी करने लगे, ताकि उनमें अपने पक्ष में भूमिका और कुछ मत लिखवा सकें। कश्मीरों की सेवा में तो हम साल परी लेकर पहुंचते रहे।

भाग-दौड़कर हम भूमिका सहित कुछ मत लिखवा लेने में सफल हो गए, लेकिन असल समस्या तो अभी ज्यों की त्यों कायम थी।

पुस्तक प्रकाशित कौन करे? इसके लिए किसी प्रकाशक की तलाश जरूरी थी। हमने पुस्तक छपवाने के लिए सिर-धड़ की बाजो लगाई हुई थी। अस्तु, अमृतसर, जालंधर, दिल्ली घूम-फिरकर कई प्रकाशकों के द्वार खटखटाए, लेकिन कहीं से भिक्षा न मिली। अपनी पुस्तक छपवाने के लिए न तो हमारे पास पाँड-डालर थे, न ही हम कोई ऊँचे अफसर या अधिकारी थे। हम तो केवल एक साधारण-से लेखक थे। पहली बार हमें प्रकाशकों के मगरमच्छ रूप के भाकार दर्शन हुए। हमें यह कहकर टाला गया, "अजी! पंजाब में पुस्तकें पढ़ता ही कौन है? हम तो पहले ही पुस्तकें छापकर बड़े दुखी हैं। यदि आप स्वयं पैसे खर्च कर सकते हैं, तो देख लेंगे। पंद्रह सौ रुपये खर्च आएगा। पैसे जमा करवा दें।"

यह पूछने पर कि पैसे बापम कैसे करेंगे? उत्तर मिला, "मारो-दोस्तों में बांटने और पढ़ने के लिए कुछ प्रतिभा मिल जाएंगी। पैसे नौटाने की यात न छेड़ें। यो सगता है कि आप लेखक नहीं हैं, बल्कि किसी की पांडुलिपि चोरी से उठा लाए हैं। हमारे पास कभी किसी असली लेखक ने पैसे नहीं मागे। यदि लेखक में कुर्बानी का मादा न हो तो उसे खाक लेखक धनना है!"

बात क्या, द्वार-द्वार भटकने के बाद हमारी मुलाकात एक टूटे-से लेखक-प्रकाशक मास्टर मद्धिम लाल जी से हो गई। वह समाजवादी विचारधारा के अलम्बरदार और राजनैतिक क्षेत्र में भी मुह मारने वाले व्यक्ति थे और चंडीगढ़ से प्रकाशित होने वाले छमाही पत्रिका 'लकीरें' के सम्पादक थे। आठ सौ रुपये में उनके साथ सौदा तय हो गया, लेकिन

जल्दी ही ही हमें उनके समाजवाद का आभास हो गया। पंद्रह-बीस चक्कर लगाने के बाद जब हम मरने-मारने पर आए, तब जाकर उन्होंने पुस्तक प्रेम में दी। बात बया, वर्ष-भर खराब होने और भाग-दौड़ करने के बाद पुस्तक छप गई। प्रेस वालों को कुछ पैसे देकर हमने वहां से बीस-पच्चीस प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली, ताकि अपनी पुस्तक को छाती से लगाकर दिल ठंडा कर सकें। यारों-दोस्तों को जब पता चला, तो उन्होंने कहा, "पुस्तक छापकर घर में रख ली है। हमका विमोचन-समारोह कब कर रहे हो?"

"विमोचन-समारोह की क्या जरूरत है? पुस्तक छपनी चाहिए थी, मो, छप गई है।"

"बाह रे भोंदू! जब तक पुस्तक विमोचन-समारोह करके किसी प्रसिद्ध लेखक या प्रख्यात राजनैतिक नेता के करकमलों द्वारा इसका विमोचन नहीं कराएगा, तब तक इसकी साहित्यिक क्षेत्रों में कुछ-गछ कैसे होगी? पुस्तक पर किसी आलोचक से परचा पढ़वा। फोटो अखबारों में छपे। लोगो में चर्चा हो, तो पता चले कि अमुक लेखक की पुस्तक छपी है।" पहली बार ही पता चला कि जैसे जवान बेटी के लिए घर-घर की जरूरत होती है, उसी प्रकार छपी पुस्तक का भी विवाह रचाना जरूरी होता है।

खैर, ओखली में सिर दिया, तो मूसलों से क्या डर? दोस्तों के महान कथनानुसार हम इस काम के लिए रजामद हो गए, लेकिन पुस्तक विमोचन के लिए कौन-से प्रसिद्ध व्यक्ति को बुलायें और निमंत्रण-पत्र किस-किस को भेजें? बड़ी गंभीर समस्या थी, लेकिन 'जहां चाह, वहां राह' के कथनानुसार इस सारे समारोह की जिम्मेदारी हमारे मित्र 'साहित्यधारा' के प्रधान तोता सिंह 'पंछी' ने अपने जिम्मे ले ली।

पांच सौ रुपये साहित्यकारों के जलपान, फोटोग्राफर, भाइक आदि के खर्च के लिए पंछी जी ने हमसे जमा करवा लिए। कार्यक्रम बनाकर समारोह आयोजित कर दिया गया। चंडीगढ़ के प्रसिद्ध आलोचक डाक्टर प्रकाश सिंह 'अंधेरा' को पुस्तक-विमोचन करने के लिए बुलाया गया। अखबारों में से मूचना पढ़कर छोटे-मोटे सैकड़ों लेखक एवं आलोचक महत्त्वपूर्ण छात्राधारियों की तरह उतरने शुरू हो गए। कस्बे के हाई-

स्कूल में, जहाँ समारोह हो रहा था, विवाह जैसी चहल-पहल हो गई।

प्रमुख अतिथि के पहुंचने पर उनको हारों से लाद दिया गया। फोटो उतारे-उतरवाए गए और 'पंछी' जी ने करंवाई शुरू की। पहले पहुंचे दर्जन-भर कवियों-कवयित्रियों ने कावताएं पढ़ीं। बाद में प्रमुख अतिथि ने पुस्तक-विमोचन किया और फरमाया :

"इस पुस्तक का विमोचन करके मुझे बड़ी खुशी हो रही है। यद्यपि अतिव्यस्तता के कारण मैं यह पुस्तक पढ़ नहीं सका, तथापि इस बारे में मैं अघेरे में नहीं हूँ, क्योंकि मेरा नाम प्रकाश सिंह है। अस्तु, मुझमें पूरा-पूरा प्रकाश है। इसमें लेखक ने जीवन के यथार्थ को बड़ी सूझ-बूझ और दिलेरी के साथ चित्रित किया है और समाज को नयी दिशा प्रदान की है। इसमें कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक वाले सभी गुण और तत्त्व विद्यमान हैं। निश्चय ही साहित्य में यह एक मील-पत्थर सिद्ध होगी। मैं लेखक को उसकी इस उत्कृष्ट रचना के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि लोग इसको आंखें मूंदकर पढ़ेंगे।"

एक हिप्पी-रूपी साहित्यकार ने, जिसने आंखों पर खींचे चढ़ाए हुए थे, उठकर फरमाया, "जनाब ! मील-पत्थर न कहें। अब फासला मीलों में भी नहीं, किलोमीटरों में मापा जाता है, इसलिए किलोमीटर-पत्थर कहिए।"

एक अन्य आलोचक ने फरमाया, "पुस्तक काफी मोटी है। इसलिए इसमें समाज के बारे में मोटी-मोटी जानकारी लेखक ने एकत्र की है। मोटी अवल वाले लेखक ही मोटी पुस्तकें लिखते हैं। मिनी युग में मोटी पुस्तक और मोटी औरत को पसंद नहीं किया जाता। लेखक ने इसकी कीमत दस रुपये रखी है। महंगाई के इस युग में इसकी कीमत बहुत अधिक है। इससे पता चलता है कि लेखक अधिक पैसे कमाकर अमीर होने की धालसा रखता है और उसका दृष्टिकोण प्रोलेतारी नहीं है। अस्तु, यह पुस्तक गरीब मजदूरों को क्या संवार सकती है? लेखक को अपना संवद भुग्गी-झोंपड़ियों के साथ जोड़ना चाहिए। बुजुर्गों और श्रमिकों को खरीद लेती है। लेखक को विकास माल नहीं होना चाहिए। काम-रेड माओ का फरमान है..."

कामरेड आलोचक के बाद एक अन्य दुबले-से डाक्टर-रूपी विद्वान ने फरमाया, “इस पुस्तक के छपने से लेखक पहले दर्जे के साहित्यकारों की पंक्ति में आ पड़ा हुआ है। आज हम पश्चिमी देशों के साहित्यकारों के मुकाबले में ऐसी रचनाएं बड़े गर्व से रख सकते हैं। इनमें अमुक-अमुक बाद हैं। हमने आधुनिक मनुष्य का आधुनिक अनुभव व्यक्त किया गया है। साहित्य अकादमी को चाहिए कि ऐसी पुस्तकों को बिना पढ़े ही पुरस्कार दे दे।”

समारोह की कार्रवाई समाप्त होने के बाद सभी साहित्यकार चाय की मेजों के गिर्द आ जमा हुए और बर्फी-रसगुल्ले का कतले-आम करने लगे। पूरी तरह मैदान साफ करने के बाद कुछ एक तो उतावली का बहाना करके जल्दी बस या गाड़ी पकड़ने के लिए विदा हो गए, लेकिन बहुत-से अभी भी इधर-उधर मंडरा रहे थे।

‘पंछी’ जी ने मुझे बुलाया और मेरे कान में कहा, “भार ! डा० ‘अधेरा’ जी को आने-जाने का किराया आदि पचास रुपये देने का वायदा किया था। वैसे तो समूरे सारे ही खर्च हो गए। पचास रुपये निकासना जरा ! डाक्टर साहब को विदा करके फिर कोई काम-धाम करते हैं।”

पचास का नोट लेकर ‘पंछी’ जी ‘अधेरा’ जी को छोड़ने रिक्शा लेकर बस-अड्डे की ओर नी-दो-ग्यारह हो गए। पीछे बचे-बुचे लेखक रात को घूंट-भर पीने के लिए हमें यो घेरे हुए खड़े थे जैसे पुलिस ने किसी म्मग-लर को घेरा डाला हो। समारोह देखकर मेरी आंखों के सामने गहरा अधेरा फैलता जा रहा था और धरती पूरी गति से घूमती हुई प्रतीत हो रही थी।

हम भूमिका लिखवाने गए

निरंजन शर्मा सेखा



भूमिका लिखने वाले तो अनेक विद्वान थे, जैसे कि प्रिंसिपल संतसिंह सेखों, प्रिंसिपल सुजान सिंह, डा० गुरुनाम सिंह तोर, कन्हैयालाल कपूर और बीबी अमृता प्रीतम जी आदि, लेकिन हमने सोचा कि यह महापुरुष तो अब तक यह शुभकार्य करते-करते थक तथा ऊब गए होंगे या यह भी हो सकता है कि भूमिका लिखवाने वाले साहित्यकारों के बिगड़े मूड को देखते हुए इन्होंने ऐसी सेवा से तोबा कर ली हो। इसलिए इस समस्या पर अच्छी तरह विचार करते हुए हमारी तो यह राय बनी कि हमें कोई और अवल का अंधा पंजाबी-प्यारा ढूढ़ना चाहिए, जो कि भूमिका लिखकर पुस्तक को इतना चमका दे कि पाठक उसको अघेरी रात में भी बिना लाइट के पढ़कर आनंद ले सकें।

इस विषय पर घोड़ों की रैस की तरह अवल दौड़ाई। जब आंखों के सामने तारे नाचने लगे, तो तत्काल पंजाबी के प्रसिद्ध आलोचक श्री दुर्जन सिंह का चेहरा-मोहरा दैत्य के रूप में सामने आ खड़ा हुआ। इस प्रिय शवल के पहले कभी दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। मोह-सा जाग उठा। नजर भरकर जरा और ध्यान दिया। इस चेहरे पर कुछ अवगुण-रूपी धब्बे दिखाई दिए, लेकिन मैंने इनकी ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया, क्योंकि मामला कुछ अपने स्वार्थ का था। कहा जाता है, मत्तलब के समय तो किसी ने गधे को भी बाप बना लिया था।

अपनी पुस्तक की पाहूलिपि उठाई और पता पूछता हुआ श्री दुर्जन सिंह की कोठी के बाहर लगी घंटी का बटन जाकर दबा दिया। एक मिनट, दो मिनट और फिर दस-बारह मिनट बीत गए। कोठी के अंदर

कोई हलचल नहीं हुई। हाँ, एक कुत्ते के भौंकने की तेज और दिल कंपा देने वाली आवाज अवश्य आ रही थी। मैं सोच में पड़ गया कि यदि यह कुत्ता अपनी जंजीर खुलवाकर या तुड़वाकर दीवार फादकर आया, तो मेरा क्या बनेगा ?

मैं निराश होकर सौटने ही वाला था कि एक लंबे, लेकिन भरी शक्ति-सूरत वाले सरदार जी ने दरवाजा खोला। चेहरे से वह कुछ क्षुब्ध लग रहे थे, जैसे अभी-अभी किसी से लड़-झगड़कर आए हों (शायद घर-वाली के साथ ही महाभारत हुआ हो)। मैं यह अनुमान लगाकर कि यही सरदार दुर्जन सिंह जी होंगे, अभिवादन किया। उन्होंने मेरे अभिवादन का जवाब देते हुए सवाल कर दिया, "सुनाइए, क्या काम है? क्यों कष्ट किया इस समय?"

मेरे विचार के अनुसार यदि वह कह देते, "क्यों कष्ट दिया इस समय," तो कुछ अधिक उपयुक्त होता, लेकिन वह मानसिक रूप में उखड़े हुए थे, इसलिए सवाल भी कुछ अटपटा-सा कर दिया। मैंने उत्तर देते हुए कहा, "जी, मुझे 'बड़बोला' कहते हैं। आपके पास अपनी पुस्तक की भूमिका लिखवाने के लिए हाजिर हुआ हूँ।"

"बड़बोला?"—उन्होंने विस्मय प्रकट करते हुए मुझे बरामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठने का इशारा किया। स्वयं वह कुछ दुविधावस्था में दूसरी कुर्सी पर विराजमान हो गए।

'जी हाँ!'—मैंने पूरी विनम्रता से कहा।

"पंजाबी साहित्य में यह नाम मुझे तो कहीं पढ़ने-सुनने को नहीं मिला?"—उन्होंने शुष्क स्वर में कहा।

"जी, मैंने नया-नया लिखना शुरू किया है!"—यह कहते हुए मुझे जो अनुभव हुआ, जैसे मैं कोई इंटरव्यू दे रहा होऊँ और मुझ पर हो रहे सवालों का जवाब देना मेरे बस में बाहर हो।

"दोस्त, कुछ-न-कुछ तो लेखक के साहित्यिक पक्ष में चर्चा होनी चाहिए। चर्चा तभी होती है अगर वह लिखता हो, और लिखे भी उच्च-कोटि का!"

"जी, मेरे लेख भी कुछ मासिक पत्रिकाओं में छपे हैं। पाठकों ने

उनको पसंद भी किया है।”

“मेहरदान, यों लिखने-लिखाने की क्या बात है ? हर ऐरा-मौरा पंजाबी लेखक बना फिरता है। विचार वाली बात तो यह है कि ऐसी रचनाएँ पंजाबी पाठकों को क्या देती हैं ? उनका पथ-प्रदर्शन क्या करती हैं ?”

“श्रीमान् जी, मेरा तो यह पहला ही प्रयत्न है।”

“प्रयत्न की बात अच्छी कही है। देखो, शायद पता न हो। मैंने ‘आलोचना-साहित्य’ की पूरी पंद्रह पुस्तकें लिखी हैं, तभी कही मेरा नाम बना है। क्या तुममें इतना दम है, इतनी शक्ति है ?”

“मनुष्य का काम तो, जी, लगन से मेहनत करना है...”

“मेरे भाई, मेहनत वाली क्या बात हुई !”—सरदार दुर्जन सिंह जी ने मेरी बात काटते हुए कहा। “कल एक कहानीकार मेरे पास आया। उसने अपने कहानी-संग्रह की पांडुलिपि मुझे बमाते हुए कहा, ‘इस पुस्तक के बारे में अपने विचार लिखने हैं आपको ?’ उसकी यह बात सुनकर मुझे बहुत गुस्सा आया। यह भलामानस यही समझता होगा कि मुझे पुस्तकों के बारे में लिखने-लिखाने के सिवा और कोई काम ही नहीं ? सोचने वाली बात है, मैं भी बाल-बच्चे वाला हूँ। मुझ पर भी घर-गृहस्थी का बोझ है। खैर, मैंने अपना गुस्सा उसके सामने प्रकट नहीं किया और पांडुलिपि पर सरसरी नजर ढासने लगा। मुझे लगा कि यह आदमी तो पंजाबी भाषा के ज्ञान से बिल्कुल खासी है। उसे तो मात्राओं का अंतर भी नहीं मालूम था। शब्द-विन्यास इतने गलत थे कि कुछ मत पूछिए। मैंने अपनी तसल्ली के लिए पूछ ही लिया, ‘क्यों भाई तुम्हारी शिक्षा क्या है ?’

“‘जी, मैंने ज्ञानी (पंजाबी भाषा की प्रभाकर परीक्षा) पास की हुई है !’—उसने इस प्रकार गर्व से बताया, जैसे पी-एच० डी० की हो। अतः बड़बोला भाई, पंजाबी लेखक तुम्हें अधिकतर ज्ञानी पास ही मिलेंगे; क्योंकि ज्ञानी पास करके हर एक स्वयं को महान लेखक समझने लग जाता है और उनका लिखा हुआ साहित्य पाठकों पर कितना स्वस्थ प्रभाव डालता है, यह बात किसी से छुपी हुई नहीं है।”

मैंने सोचा, कही सरदार दुर्जन सिंह जी ‘बेटी के बहाने’ वहाँ को

सिखा' वाला हथियार मुझ पर तो नहीं चला रहे, लेकिन अब किया भी क्या जा सकता था ! वह कौन-से मुझे बुलाने गए थे ! मैं तो स्वयं ही चलकर उनके पास आया था । फिर भी मैंने बुद्धि से काम लेते हुए बात खत्म करने को ही बेहतर समझा ।

“अच्छा जी, मेरे लिए क्या हुक्म है ?”

“तुम यों करो, अपनी पुस्तक की पांडुलिपि मुझे दे जाओ । पढ़कर मैं इसकी भूमिका लिख दूंगा ।”

“फिर किस दिन आपके दर्शन करूं ?”—अपनी पुस्तक की पांडुलिपि उन्हें सौंपते हुए मैंने पूछा ।

“एक सप्ताह बाद इसी दिन—यानी अगले रविवार को ही ।” उन्होंने जवाब दिया ।

मैं सरदार दुर्जन सिंह जी को अभिवादन करके वापस अपने घर आ गया । यकीन करना, यह एक सप्ताह मैंने बड़ी मुश्किल से बिताया । मेरे लिए तो एक-एक दिन सप्ताह ही बन गया था । हर रात मुझे आलोचक साहब की लिखी भूमिका के मधुर-मधुर सपने आते रहे । इन सपनों में मुझे सरदार दुर्जन सिंह जी की लेखनी में उच्चकोटि का हास्य-व्यांग-लेखक बना दिया था और मैं उत्साह से भावविभोर होकर यह भूमिका अपने प्रत्येक लेखक-मित्र को पढ़वा रहा था । वे मुझे प्यार-भरी बधाइयां पेश कर रहे थे ।

अंत में इकरार का दिन आया । मैं खुशी-खुशी सरदार दुर्जन सिंह की कोठी पहुंचा, और घंटी का बटन दबाया । इस बार दुर्जन सिंह के बजाय उनके नीकर ने दरवाजा खोला । मुझे देखते ही एक बार फिर वह अंदर चला गया और मेरी पुस्तक की पांडुलिपि उठा लाया । वह मुझे पांडुलिपि वापस करते हुए बोला, “यह कागजों का पुलिदा साहब आपको देने के लिए कह गए थे ।” फिर तत्काल उसने दरवाजा बंद कर लिया । जैसे उसके लिए मैं चोर-उचक्का होऊँ, और बुरी नीयत से आया होऊँ ।

घर आकर जब मैंने अपनी पुस्तक की पांडुलिपि को देखा-भाला, तो वह उसी रूप में थी, जिस रूप में सरदार दुर्जन सिंह जी को सौंपकर आया था ।

मेरी पंजाबी फिल्म

जगदीश सिंह



जब हिंदी फिल्मों के प्रोड्यूसरों ने अपनी फिल्मों के लिए मुझे 'साइन' करना बंद कर दिया तो 'पंजाबी प्यार' ने जोर मारा और मैंने एक पंजाबी फिल्म बनाने का निश्चय कर लिया। आखिर लगता क्या है एक पंजाबी फिल्म बनाने में? पांच-दस गुड्डे-गुड़ियां इकट्ठे कर लो। चार खेत और पांच-सात पक्के मकान खड़े कर लो—बस, पंजाबी फिल्म बन गई। अगर थोड़ी-बहुत कमी रह जाए तो एकाध भंगडा करा दो, जो आजकल गांवों में कहीं दिखाई नहीं देता। लंगड़े, लूने, भेंगे, मीरासी तो पंजाबी फिल्मों की शान हैं।

मेरे द्वारा पंजाबी फिल्म डाइरेक्ट करने की घोषणा के कारण चारों ओर खलबली मच गई। फिल्मो हस्तियां कहने लगीं, “बलो, एक और बढ़िया डाइरेक्टर 'फूट पाथ' पर आ गया।”

“इतना ही नहीं, जनाब! खुद तो डूबेगा ही, अपने साथ दर्जनों फिल्मो हस्तियों को भी ले डूबेगा।”

“जनाब, पंजाबी होना और पंजाबी की सकासत करना तो बुरा नहीं, पर पंजाबी फिल्म शुरू करके अपना और कई अन्य आदमियों का 'कैरियर' तबाह करना मूर्खता से कम नहीं। पंजाबी फिल्म बनाना, पंजाबी फिल्म को फाइनेंस करना, पंजाबी फिल्म को डिस्ट्रीब्यूट करना और पंजाबी फिल्म देखना तो केवल पिछड़े हुए और घटिया लोगों का ही काम है। कोई बुद्धिमान आदमी ऐसी बेबकूफी नहीं करता।”

कानाफूसी होती रही, किंतु मैं अपने निश्चय पर अटल था। अस्तु, फिल्म शुरू कर दी।

सबसे पहला काम था फिल्म का नाम रखने का। 'फिल्म पत्री' देखी तो उसमें यही लिखा था—“अंग्रेजी फिल्मों के रोमांस में मरदाना झटका है, जिसे झेलना हर एक के बम की बात नहीं। बगल और मद्रास के रोमांस में जनानापन है, जो जवान दिलों को पसंद नहीं और आम हिंदी फिल्मों का रोमांस मदं और ओरत के बीच 'उनका' नाचना-गाना है। इन फिल्मों को बनाना भी आसान है और इन्हें देखा भी प्यार से जाता है। इधर पंजाबी फिल्में अभी बचपन के झुनझुने और गुड़ियां भी नहीं छोड़ सकी।”

सौ, पंजाबी फिल्मों के बारे में 'फिल्मी-पत्री' की हिदायत के अनुसार मैं अपनी पंजाबी फिल्म का नाम भी 'गुड़िया-पटोले' खेलने वालों की पसंद वाला ही रखना चाहता था। अस्तु, पंजाबी फिल्म के लिए साहित्यिक, संगीतात्मक या कलात्मक नाम की तो आवश्यकता ही नहीं पड़ी। जो नाम कानों को भला लगे, जिस नाम का कोई सूझबूझवाला अर्थ हो, या जो नाम ममझदार बच्चों को पसंद आ जाए, वह पंजाबी फिल्म के लिए उपयुक्त कैसे हो सकता है? पंजाबी फिल्म के लिए तो नाम ऐसा होना चाहिए जिसमें पंजाब का उजड़ड़ कल्चर नजर आता हो या पंजाबी लोकगीतों में से। खैर, बड़े नाम सामने आये, पर कोई कलात्मक होता, और किसी में रोब-दाब की कमी होती। कोई अच्छा नाम न मिला। आखिर बचपन का सहारा लिया—'गुड़िया-पटोले' वाली फिल्म जो बनानी थी।

हमारे गांव में नर्तकी की एक टोली आई थी। चौथी कक्षा में पढ़ता था। मैं रोज रात को घरवालों से चोरी-छुपे नर्तकी का तमाशा देखने के लिए भाग जाता था।

'राम जी' नर्तक रात को लड़की 'झंडो' बनकर बड़े बढ़िया स्वाग भरा करता था—रोमांस और विवाह से बाल-बच्चे तक के बीच की सारी मजिलें। वह 'झंडो' बड़ी अदा से पंजाबी के दोहरे अर्थों द्वारा लोगों को हमाती थी। राण भैणी वाला तो झंडो पर इतना मर मिटा कि कभी-कभी जोर से आकर उसे नोटों के हार पहना देता। मुझे एक-दो बार चोरी-छुपे 'नर्तकी' को देखने के अपराध में मार भी पड़ी थी।

परवासी का खयाल था कि नर्तकों को देखना भले घरों के लोगों का काम नहीं। यही बात आज पंजाबी फिल्मों को देखने के लिए कही जाती है। धीरे, अपनी फिल्म का नाम रखने में 'झंडो' ने मेरी बड़ी गहायता की। मैंने इस नाम का निश्चय कर लिया। नाम था—“झंडो पंजाब दी है!” यही ऐसा नाम था जिसे गुनते ही लोग अपने पड़े-निसे परिवारों को साथ लेकर मेरी फिल्म देखने के लिए 'साइन' में लग जायेंगे।

नाम का अभियान समाप्त हुआ, तो मैं अपनी फिल्म के लिए 'क्वांस्ट' बुझने को निकला। एक मित्र को मिला। वह मुझे देखकर घिल उठा। मेरी फिल्म में वह बिना पैसे लिए काम करने को तैयार था। वह तो मित्रता को निबाहने के लिए 'बिना कपड़े' भी काम करने को तैयार था, पर जब मैंने मित्र को अपनी 'पंजाबी फिल्म' में काम करने के लिए 'आफर' दी तो उसे 'करंट' लगा। बोला, “मेरी मित्रता का अपमान कर, तुझे मेरी मित्रता की सौमंथ, अगर बाहर जाकर बताए कि तुम मेरे पास पंजाबी 'फिल्म' में काम करने की 'आफर' लेकर आए थे!” सदा मेरी जेब से पीने वाले मेरे उस मित्र ने उस दिन मुझे मुह्र बन्द रखने के लिए 'घूस' के रूप में अपनी जेब में पिलाई थी, क्या पता 'पंजाबी फिल्म' की 'आफर' की हवा फँस जाने से बेचारे के 'मार्केट' पर ही फँक पड़ जाता।

आखिर मित्र से मार खाकर मैंने कुछ देर के लिए अपना प्लान ठप कर दिया। अप्रैल के माह जब पंजाब के कालेज के लड़के-लड़कियाँ परीक्षा देकर खाली हो गए, तो मैंने पाँच-सात को गरमियों की छुट्टियों के लिए बुक कर लिया। यह मेरा वायदा था कि 'शटिंग' जून के महीने तक समाप्त कर दी जाएगी, ताकि अगले सेशन में वे लड़के-लड़कियाँ दोबारा कालेज में दाखिल हो सकें। क्योंकि एक बार पंजाबी फिल्म में शक्ल दिखा देने के बाद किसी को उन्हें हिंदी फिल्म के तो निरुद्ध नहीं लगने देना था। इन लड़के-लड़कियों के अलावा मैंने कुछ पंजाबी फिल्मों के 'पेटेंट कलाकार' लिए और फिल्म आरंभ कर दी।

अब प्रश्न आया कि फिल्म में दिखाना क्या है ?

फिल्म की 'सीम' के बारे में पुराना फार्मूला याद आया कि भारत में

फिल्म बनाते समय सदा ध्यान रखा जाए कि उसमें केवल वही दिखाया जाए जो कहीं नजर न आया हो। अगर किसी घटित बात को दिखाना हो तो यह दिखाया जाए, जो कभी या पर आज उसका नाम-निशान भी बाकी नहीं मिलता। इस आधार पर मैं अपनी पंजाबी फिल्म में पंजाब के जीवन के किसी भी पक्ष को नहीं ले सकता था। इसलिए न तो मैंने आज के पंजाब के नागरिक जीवन के बारे में कोई बात की, न पढ़े-लिखे की जिदगी को चित्रित किया और न ही आज का सही ग्रामीण जीवन मेरी पंजाबी फिल्म में स्थान प्राप्त कर सका।

मैं पंजाबी होते हुए भी 'बंबईया' हूँ, पंजाब से मँकड़ों मीस दूर बंबई महानगरी में मुझे पंजाब का जीवन बंबई के 'कैनवेस' पर चित्रित करना था। इसलिए पंजाब के पहाड़ों जैसे तगड़े बँलों के स्थान पर मैंने बंबई के कतूरो जैसे डंगर 'साइन' कर लिए। पंजाब के किसानों को भीड़ दिखाने के लिए लगेटों वाले जमा कर दिए। बड़ी-बड़ी बैलगाड़ियों के बजाय छकड़े लेकर मैंने पंजाब के जीवन पर फिल्म शुरू कर दी।

कहानी की जरूरत नहीं थी। अगर बिना कहानी हिंदी फिल्में 'जुबली' बना लेती हैं तो पंजाबी फिल्म के लिए कहानी की क्या जरूरत है! इसलिए हमने कैमरा जमा दिया और उसके आस-पास पंजाबी फिल्म के सेट तान दिए। बस जो कलाकार खाली मिलता शूट कर लिया जाता। 'डायलाग' मैं साथ-साथ गढ़ता जा रहा था। एक दिन एक हिंदी अभिनेत्री मिल गई। वह मेरी फिल्म में एक-दो 'शाट' देने के लिए तैयार थी। पर मजबूरी यह थी कि बेचारी को पंजाबी बोलनी नहीं आती थी। सो, हमने उसे 'अंग्रेज' बना दिया और गांव के अनपढ़ के साथ उसका इश्क करा दिया।

मेरी फिल्म जोरो से बन रही थी। एक दिन सीन के लिए 'चाटी' (दही विलीने का बड़ा-सा पंजाबी बरतन) और 'मयनी' की जरूरत पड़ गई। मैंने आदमी भेजा और वह 'चाटी' के बजाय मटकी ले आया और साथ ले आया चढ़ी-सी मयनी। अब छोटी-सी मटकी और चढ़ी मयनी से कोई बात न बन सकी। हमने मयनी के दो 'फूल' निकलवाकर हीरोइन

को दूध मघने पर लगा दिया। एक-दो पंजाबियों ने एतराज किया। पर मेरा तर्क था—“भाई, पंजाबी फिल्म के लिए मैं बीस-पच्चीस रुपये फालतू क्यों लगाऊँ? लोगों को इन बातों की क्या समझ है! फिर पंजाबी फिल्में हैं भी तो छोटी मटकियों और बड़ी मयनियों का मिलाप!”

शूटिंग खत्म हो गई तो बारी आई कास्ट की नंबरिंग करने की। ‘नंबरिंग’ की गई। फिल्म के नाम में ‘पंजाब’ के शब्द-विन्यास गलत थे, जिनके बारे में मुझे फिल्म रिलीज होने के बाद पता लगा। क्योंकि मैंने पहली पुस्तक सामने रखकर सब लिखा था और किसी पंजाबी जानने वाले से लिखवाने पर मैंसे खर्च होते थे, फिल्म पहुंची एडीटर की टेबुल पर, उसने बेतरतीब लिए गए ‘शार्टों’ में से भी एक कहानी निकाल ली और फिल्म सेंसर के घर चक्कर लगाकर रिलीज के लिए पंजाब में आ पहुंची और लगी घर-घर का दरवाजा खटखटाने, पर कोई उसे आंगन में घुसने न दे, सभी पंजाबी थे पर हिन्दी फिल्मों वाले पंजाबी! आखिर एक साहब मान गए और फिल्म रिलीज कर दी। मैंने ‘हाउस’ को फुल करने के लिए ‘फ्री पास’ यों बाटे जैसे चुनाव के दिनों में नेताओं के घर पर सदाव्रत लग जाते हैं। सभी सिनेमाओं में बालकनी और ड्रेस मर्कल फ्री पास और निम्न क्लासों आधी-आधी बरी थी। सोचा था, हाल भर जायेंगे तो खूब नाम होगा।

रात को छुपकर एक-एक सिनेमा में जाता, पर हर रोज ‘फ्री पास’ बालकनी बीड़ी पीने वाले लड़कों से भरी होती। वे आपस में बातें करते, ‘भगवान भला करे पंजाबी फिल्म बनाने वाले का जिससे हमारा फिल्म देखने का शौक पूरा हो गया। नहीं तो साला साहब फ्री-पास तो घटिया से घटिया हिंदी फिल्म का भी नहीं छोड़ता! ‘फ्री पास’ में अगर कोई पढ़े-लिखे लोग थे तो वे मेरी ही फिल्म के कलाकार, जो छुट्टियां खत्म होने के कारण दोबारा कालेज में दाखिल हो चुके थे। हिंदी फिल्मों में तो उन्हें चांस मिलना नहीं था। फिर वे कालेज की रंगोनी भी छोड़ें तो क्यों?

फिल्म को शहर-शहर में रिलीज करने के बाद हिसाब ... चला कि मेरा पंजाबी-प्यारा भाई, जिसने फिल्म रिलीज की

के कारण 'बापू' की कबाड़ी की दुकान पर टूटी पेटियो और पुरानी फिल्में बेचने के लिए बैठ चुका था, क्योंकि शिक्षित नागरिकों के लिए मैंने फिल्म बनाई ही नहीं थी और ग्रामीण फिल्म देखने आए नहीं थे !

साले, डरपोक

एम० के० राही फिरोजपुरी



अखबार पढ़ते हुए रामप्यारी की नजर अखबार की उस बड़ी-सी सुर्खी पर जाकर रुक गयी, "आज पंजाब बंद है।"

यह खबर उसको झंझोड़ गयी और उसने ठंडी लम्बी सांस लेते हुए मुंह सिकोड़ा।

"ए जी, मैंने कहा, क्या बनेगा ? मोह नाम की चीज दुनिया में से खत्म होती जा रही है। जब देखो, हर रोज सुबह जलसे-जलूस, घरे और हड़तालें, जैसे इनके पास इसके सिवा अन्य कोई काम ही न हो।"

"आप बहुत भोली हैं, रामप्यारी जी ! यह लोकराज्य है ! लोकराज्य ! अब जबकि हमारे देश के नागरिक राकेश शर्मा जी अंतरिक्ष तक पहुंच गये हैं, तो हमने जलूसों से कर्पू तक उन्नति कर ली है और वह भी आपकी आंखों में खटकती है।"

"हां, हां। खटकती है मेरी आंखों में आपकी उन्नति। कर्पू हमारे लिए कैसा !" उन्होंने भूमी की दाल में कड़छी मारते हुए कहा, "हम तो दिन-भर कोल्हू के बेल की तरह लगे हुए हैं। कर्पू तो आप जैसे निठल्लों के लिए है।"

"अच्छा जी, अब हम निठल्ले हो गये ! चलो, ठीक है। आप रोटी तैयार कर दें। हमे दपतर जाना है।"

जब हम दपतर जा रहे थे, तो रास्ते में हंगामा मचा हुआ था। बाजार बंद हो रहे थे। पुलिस तेजी से इधर-उधर घूम रही थी। हड़ताली सज्जन तरह-तरह के नारे लगा रहे थे :

पंजाब... जिंदाबाद-भुरदाबाद...

हमारी एकता...जिदावाद-जिदावाद...

हक लेंगे...साथ-साथ

मैंने जब पास चढ़े एक महाशय से इन नये नारों के बारे में पूछा, "भई, यह क्या भाजरा है?" तो वह बड़ी भीठी और प्यारी भाषा में बोले, "राम अवतार जी, अंधे हो, दिखाई नहीं देता?" अभी उसका यह बावय पूरा नहीं हुआ था कि पुलिस ने भीड़ को तितर-बितर करने के लिए अश्रु-गैस के गोले छोड़े और लाठीचार्ज की, तो वह थोड़े जूतियों को छोड़कर एक-दूसरे को रौंदते हुए अंधाधुंध भाग निकले। आगे-आगे लोग और पीछे-पीछे हमारी जनप्रिय पुलिस थी और हम भी एक स्रुत के तले छुपकर बैठे हुए यह सब कुछ देखकर आनन्दित हो रहे थे। कुछ देर बाद बाजार शमशान की तरह नजर आ रहा था।

अस्तु, हमने अपने साथी टिफन देवता को छाती से लगाया। पगली बीबी के पानी में उलटी तरफ बहने की तरह दफ्तर जाने के विचार को बीच में छोड़कर घर की ओर चल दिये।

वापसी पर कुछ पुलिस वालों ने हमें आ बेरा। पिटाई के कारण निकल रही मेरी चीखें सुनकर लोग छतों पर चढ़कर देखने लगे थे, लेकिन किसमें हिम्मत थी कि वह मुझे उनसे आकर छुड़ाए। भला पुलिस और कसाई में क्या अंतर है! कसाई जान से एक ही बार मार डालता है और पुलिस हलाल की तरह जिवह करके।

आखिर खूब पिटाई करने के बाद उन्होंने हमारे साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा, "क्यों अरे, क्या नाम है तेरा?"

"जनाब! सेवक को राम अवतार कहते हैं, और एक मामूली-सा बलक है।"

"पर तू अंधा है। तुझे पता नहीं, यह रास्ता हमने ब्लाक किया हुआ है? तू कुत्ते की तरह पूछ उठाए इधर दौड़े आ रहा था।"

"जी, मैं तो..."

"चल, बकवास मत कर। मेरे बाप के साले, जा दफा हो जा!" उन्होंने बंदूक का बट मेरी पीठ पर मारते हुए कहा।

जब हमने घर आकर अपना चाद जैसा मुखड़ा शीशे में देखा, तो मुह

पर भारत का नक्शा बना हुआ था। रामप्यारी गर्म-गर्म चाय का कप लाई और मेरे ताजा जूटों पर नमक छिड़कती हुई कहने लगी, “बालम, अच्छा हुआ पुलिस वालों ने आपको शांति का सबक सिखा दिया। शुक्र करो, उन्होंने आपको लीडर समझकर सलाखों के पीछे नहीं ढकेल दिया।”

अभी उसका वाक्य पूरा नहीं हुआ कि तड़ातड़ गोली की आवाजें कानों में पड़ी, और सारे शहर में मातम जैसा फिर छा गया। ईश्वर जाने क्यों?

रामप्यारी गोली की आवाज सुनते ही अंडरग्राउंड हो गयी। हमने ऊंट की तरह होंठ सटकाये सारा घर छान मारा, लेकिन उनका पता न चला। बच्चे भी सहमे हुए थे।

अखिर हमने रसोई में नजर दौड़ाई, तो देखकर दग रह गये कि रामप्यारी हाथ में बेलन लिये रसोई की स्लैब तले बेहोश पड़ी थी। अगर पांच-सात मिनट और उसका पता न चलता, तो रामप्यारी सचमुच राम को प्यारी हो जाती और हम---

यलिहारी जायें पड़ोसियों के, उन्होंने मेरी हासत पर तरस खाते हुए न आगे देखा, न पीछे, और तत्काल डाक्टर को बुलाने चल दिये।

हमने रामप्यारी को पलंग पर लिटाया और उसके मुंह में पानी डालते हुए उसकी हथेलियां मलने लगे। जब उसने आंख झपकी तो हमने सुख की सांस ली। उस समय डाक्टर साहब भी आ घमके।

उन्होंने नब्ज देखी। हमें हौसला दिया और सिरिज गर्म करने के लिए इशारा किया। हमने स्टोव देवता को दियासलाई दिखाई, तो वह पंजाब रोडवेज की बस की तरह फक-फक करने लगा।

जब हमने एक नजर सिरिज की ओर डाली, तो हमारे होश उड़ गये। इतनी मोटी सुई और सिरिज पहली बार मैं देख रहा था।

मैंने हैरान होकर कहा, “डाक्टर साहब, आप आदमियों के डाक्टर हैं या जानवरों के---”

मेरी धबराहट देखकर सिरिज की ओर नजर डालकर डाक्टर भी धबरा गया, “माफ करना। जल्दी में मैं गलती से दूसरा बैग ले आया हूँ, पर दवाइयों का फार्मूला ‘सेम’ (वही) होता है। इंजेक्शन मनुष्य की

मात्रा के अनुसार लगाऊंगा । आप डरें नहीं ।”

इतने में रामप्यारी होश में आ गयी । वह मोटी-साजी सुई देखकर चीख उठी, “नहीं, नहीं, मैं टीका नहीं लगवाऊंगी ।” टीके से उसे पहले ही नफरत थी, और अब तो रामप्यारी ने चीख-पुकार से आकाश सिर पर उठा लिया । उधर जानवरों की सिरिज लिये डाक्टर भी घबरा गया था । हमने घर्मपत्नी को बिना टीका लगवाये ही बीस रुपये देकर डाक्टर को चलता किया । दरवाजे में से बाहर निकलते हुए डाक्टर बड़बड़ाये जा रहा था, “साले, डरपोक ! अगर इंजेक्शन नहीं लगवाना था, तो हमें बुलवाने की क्या जरूरत थी ?”

सम्पादक की कुरसी पर

तख्त सिंह कोमल



चुनाव बोर्ड ने सर्वसम्मति से हमें 'उन-उन गोपाल' मासिक पत्रिका का संपादक चुन लिया। घरवाली ने गली-पड़ोस में लड़कू बांटे और जी भरकर बधाइया ली। उस दिन हमने अन्य कोई काम नहीं किया, केवल धूम-फिरकर रद्दी वालों से पुरानी किताबें, अखबार, पत्रिकाएं आदि खरीदते रहे, क्योंकि किसी सम्पादक के लिए सबसे पहली और जरूरी चीज यह पुरानी पत्रिकाएं और अखबार आदि ही हैं। बाहर से मैटर न आने की अवस्था में इनका ईश्वर जैसा सहारा होता है।

अगले दिन दफ्तर में हम सम्पादक की कुरसी पर जाकर सुशोभित हो गये। अपने बैठने के लिए कमरा ऐसा चुना, जिसमें पहुंचने के लिए पहले तीन-चार कमरों में से गुजरकर आना पड़े। इन कमरों की दीवारों पर हरिणों के सींग, शेरों के भूसे से भरे सिर, चीतों की खालें, और जंगली भैंसों के सिर आदि टांग दिये, ताकि देखने वाले पर हमारे सम्पादक पद का पूरा-पूरा रौब बैठ जाये। इन कमरों में रद्दी में खरीदे अखबार, पत्रिकाएं और किताबें रखवा दी। कुछ किताबें अलमारियों समेत एक गरीब-असहाय लेखक से केवल एक सौ रुपये में ही मिल गयी थी। एक नुक्कड़ में उनको भी सुसज्जित कर दिया। बात क्या, खूब ठाठ वध गया। तीसरा कमरा जगत्-प्रसिद्ध कवियों और लेखकों की तस्वीरों और ऐतिहासिक चीजों से भर दिया, ताकि किसी वस्तु की कमी न रह जाये। अपने कमरे में केवल फूलदान, कलमदान, पानदान, जगलदान, मेज, कुरसी, कैलेंडर, रद्दी की टोकरी, कुछ-इलाइचियां और मिथी आदि ही रखी, ताकि साथ ही साथ आवाज सुरीली और मुख मोठा भी होता

रहे। आगों पर कासे घोंपे (ऐनक) लगा लिये, ताकि अगर किसी दोस्त से आग से आग मिलाकर बात करनी पड़ जाये, तो हम झोंप में आकर सम्पादक के पेशे को बदनाम न कर बैठें। बाहर कालवेस लगवाकर मंगलू चपरासी को चेतायनी दे दी कि जब कोई मुलाकाती या मुलाकातिन आये, बिना घंटी बजाये उसे बिलकुल अंदर न साये। यह पेशकदमी केवल हमें अग्रिम सावधान करने के लिए था।

घंटी बजते ही हम हड़बड़ाकर कुर्सी से उठ जाते, शीशे में पगड़ी और अपनी गिजाब लगी दाढ़ी का जापजा सेते और फिर मूछो को और फुड़लदार बनाकर पलक झपकते में कुर्सी पर डट जाते और यूँही कुछ लिखने लग जाते। माथे पर त्योंरी झाल सेते और शरीर को मास के आटे की तरह अकड़ा लेते। आप जरूर हैरान होंगे कि मैं इतना काम इतनी जल्दी कैसे निपटा लेता था। बस, यही हैरानी मुझे भी है। न जाने मुझमें इतनी शिव जी जैसी शक्ति कहाँ से आ जाती थी? फिर जब मंगलू मुलाकाती को अंदर लाता, तो हम पूरे पाँच मिनट तक उसकी ओर देखते नहीं थे...बस, यूँही व्यस्त-से बैठे रहते। लिखते समय, वक्त का अंदाजा हम कलाई घड़ी को बार-बार देखकर लगा लेते थे। जब पूरे पाँच मिनट हो जाते, तो हम चौंककर आँखें ऊपर उठाते और फिर मंगलू को सम्बोधित करके पूछते “अरे मंगलू, इन्होंने कैसे दर्शन दिये?”

“जी, यह आप ही निवेदन करेंगे।” मंगलू उत्तर देता।

नौकर को मैंने यह बात तोते की तरह रटा रखी थी।

मुलाकातियों में अधिकतर नौकरी की तलाश में मारे-मारे फिर रहे प्रेजुएंट और एम० ए० पास नौजवान ही होते थे। या कभी-कभार किसी टाइपिस्ट लड़की के भी दर्शन हो जाते थे, पर टाइपिस्ट लड़कियों को मैं खुद नौकरी पर नहीं रख सकता था।

एक दिन मैं अपनी श्रीमती जी से इस बारे में बात कर बैठा। उन्होंने बिना सोचे झट कह दिया, “लड़कियों से इंटरव्यू मैं खुद लूँगी। आप अपनी कृपा दृष्टि जरा दूर ही रखें।”

अगले दिन हमने दफ्तर के सामने चाक से लिखकर बोर्ड लगा दिया, “उम्मीदवार ‘लेडी टाइपिस्ट’ मेरी प्राइवेट सेक्रेटरी से बातचीत करें।”

मुझे हैरानी इस बात की हुई कि हमारी श्रीमती जी ने दो महीने अपने कठोर इष्टरब्यू से किसी को पास नहीं होने दिया। रात को मैं हर रोज पूछता, “मुनाबो जी, कोई मिली? कारस्पान्डेंस के लिए बड़ी ही तकलीफ होती है।”

वह उत्तर देती, “आती तो बहुत हैं, पर मुझे कोई पसन्द नहीं आती। कोई जलेबी-जूड़ा करके आती है। कोई सट्टे लटकाती हुई चली आती है। किसी के बाल पफ किये हुए होते और कोई पोनी टेल लटकाती हुई आती है... मुझे इनके लच्छन (लक्षण) अच्छे नहीं दिखाई देते। आज सुबह एक आयी। मेरे साथ घातें करते-करते दो बार अपने सेडी बैग में लगा हुआ शीशा देखा, और फिर हाँठों पर लिपस्टिक भी लगायी। ऐसी रांडों को कैसे रख लूं? अब इस उम्र में मुझे तो कहीं और कोई ठिकाना नहीं मिलेगा।”

एक रविवार को मैं घर पर ही था। एक सुबुक-सी मुवा लड़की नौकरी के लिए आयी। हमारी श्रीमती इष्टरब्यू लेने लगी, “टाइपिस्ट की नौकरी के लिए आयी हैं?”

“जी!”

“क्वालीफिकेशन?”

“बी० ए०, प्रभाकर!”

“पहले कही काम किया है?”

“जी, एक दफ्तर में थी।”

“नौकरी छोड़ने का कारण?... कम तनखाह? काम ज्यादा?... या कुछ और खरमस्ती?”

“जी, इनमें से कोई भी नहीं।”

“फिर?”

“जी, असल में बात यह हुई कि उस दफ्तर के बड़े बाबू जी खुद कवि होने के कारण साहित्यिक रुचियों वाले थे। एक दिन टी-ब्रेक के बीच, मेरे साथ प्यार के सम्बन्ध में चर्चा छेड़ बैठे। बाबू जी का दफ्तर घर में ही होने के कारण उनकी पत्नी ने कही हमारी बातचीत सुन ली। वह भूखी शेरनी की तरह अन्दर आ गई और मुझे बांह पकड़कर बाहर निकाल

दिया । बायू जी के साथ बाद में क्या बीती यह ईश्वर जाने ।”

“हं । इशक-सम्बन्धी बातचीत ?” शुरुआत अच्छी की है । अच्छा, अपने नाम का काहें मुझे दे जाओ । मैं तुझे साहब के साथ बात करके इनफार्म कर दूँगी ।”

मुझे अन्दर लेटे हुए ही पता चल गया कि लेडी टाइपिस्ट हमारे भाग्य में नहीं । किसी बूढ़ी के साथ ही माया-मन्ची करनी पड़ेगी ।

जरा बच के हमदर्द सलाहकारों से

कुलदीप सिंह चेतनपुरी



सलाह देने वालों को सलाहकारों के खिताब से निवाजा जाता है पर हमारा भाव यहा उन सलाहकारों से बिल्कुल नहीं है, जो किसी राज्य मे गवर्नरी राज्य हो जाने के कारण, उम राज्य के गवर्नर के साथ नियुक्त किये जाते है। इन सलाहकारों और जिन सलाहकारों की हम बात करते हैं, दोनों मे जमीन-आसमान का अन्तर है। यह सलाहकार तनख्वाह पर काम करते है, पर हमारे चाहे सलाहकार बिना किसी फीस के मुफ्त ही सलाह देते रहते है।

यह सलाहकार हमे हमारे गांवों और शहरों में आम मिल जाते हैं। इन सलाहकारों को ढूंढना नहीं पड़ता, बल्कि यह हर समय हमारे साथ ही रहते हैं। सलाहकार सलाह पूछने पर सलाह नहीं देते, बल्कि जब भी इनको सलाह देने का मौका मिलता है, यह अपने तर्कस में से सलाह के तीर छोड़ते जाते हैं। यह अलग बात है कि किसी को इनकी सलाह रास आती है या नहीं...लेकिन अपने अनुभव के अनुसार तो इनकी सलाह दीवाला निकालने में कोई भी कसर बाकी नहीं छोड़ती। हमारे कहने का मतलब यह है कि इनकी सलाह पर कार्य करने वाले ऐसे गधा-चक्कर में फंस जाते है कि इस चक्कर में से निकलने के लिए कई गधों को डेंडी कहना पड़ता है।

एक बार एक बाबू जी की हमारे कस्बे के डाकघर में बदली हो गई। बाबू जी ने हमारे पड़ोस में मकान किराये पर ले लिया और उसमे परिवार सहित रहने लगे। मकान के बाहर काफी जगह खाली थी। नलका भी लगा हुआ था। बाबू जी ने नलके के आस-पास छोटी-छोटी ब्यारिया बनाकर सब्जी बो दी। आजकल की बेहद महंगाई में आदमी को जहा भी

कुछ मिलने की आशा होती है, वह दूढ़ने का प्रयत्न करता है। बाबू जी ने मन में सोचा, “चलो, दो-चार महीने सब्जी ही घर में आ जाया करेंगी।”

गर्मियों के दिन होने के कारण बाबू जी को हर रोज शाम को नलका हाथ से चलाकर ब्यारियों में पानी देना पड़ता था। एक दिन शाम के समय बाबू जी नलका हाथ से चला रहे थे कि उनका एक जान-पहचान का सलाहकार आ गया। बाबू जी को नलका हाथ में चलाते हुए देखकर कहने लगा, “वाह! वाह! बाबू जी, क्यों नलका इस प्रकार चला-चलाकर परेशान हो रहे हैं, यहां कोई छोटी-मोटी मोटर सगवा लें।”

“आपकी बात तो ठीक है, पर आजकल तनख्वाह में मुश्किल से दो वक्ता का गुजारा होता है... हजार रुपया हम कहां से लाएं? और अगर मोटर ले भी आएंगे तो बिजली का बिल भी तो बढ़ जायेगा...” इस तरह थोड़ा-सा समय लगाकर काम चला लेते हैं... फिर हमारा क्या पता, कल को बदली हो जाये?” बाबू जी ने अपनी मजबूरी प्रकट करते हुए जवाब दिया।

“आपकी एक तनख्वाह के साथ मोटर आ जायेगी एक महीना किसी तरह गुजारा कर लें। और यह बिजली के बिल से ढरने की क्या जरूरत है... घर-घर लोग तारें सीधे खम्भे से सगाये हुए हैं... यहां लोकराज्य में कौन पूछता है... और अगर कभी बदली की बात हुई, तो मोटर बिक भी सकती है। यह कौन-सी गाय-भैंस है, जो बहुत समय इस्तेमाल करने में बूढ़ी हो जायेगी... इसका उतना ही मूल्य फिर मिल जायेगा!” सलाहकार ने अपनी दलील को बजनदार बनाते हुए कह दिया।

इन बातों से बाबू जी पर सलाहकार का अच्छा प्रभाव पड़ गया। बाबू जी को यह हमदर्दी-भरी सलाह जंच गई। वह अगले सप्ताह ही मोटर खरीद लाये। जरूरत के समय बाबू जी बिजली का तार टाइटनेट फिट करके अपना काम चला लेते। इस प्रकार बाबू जी की महोना, दो महीने खूब मौज बनी रही और वह मन-ही-मन में हमदर्द सलाहकार को दाद देते रहे, लेकिन ‘सो दिन चोर के, एक दिन साध का’ वाली कहावत के अनुसार एक दिन बिजली बोर्ड के कर्मचारियों ने बाबू जी की यह खोरी पकड़ ली।

यह देखते ही बाबू जी के हाथों के तोते उड़ गये। उन कर्मचारियों ने मिनटों में ही कमरे का सारा कनेक्शन काट दिया और वह मोटर तारों समेत ले गये। बिजली बोर्ड वालों ने उन पर दो हजार जुर्माना किया। बाबू जी ऐसे शिकंजे में फँस गये कि मकान-मालिक ने भी उनको मजान में प्रविष्ट कर दिया, क्योंकि नया मोटर लगवाने के लिए मकान-मालिक को दो बार सिक्कूरिटी फीम चुकानो पड़ी थी, और कई बार ट्वांश होने के बाद मोटर लगता था। भाग-दौड़ करके बाबू जी ने दो हजार रुपये जुर्माना चुकाया और मोटर छुड़ा ली। कस्बे में और वही कियाये पर मकान न मिलता देखकर बाबू जी को बदली करानी पड़ी। इस प्रकार वह अपने मन में सलाहकार को कोमते हुए मजान आग्री में वहाँ से प्रस्थान कर गये।

इन सलाहकारों का सलाह देने का अपना निराला ढंग होता है। यह ऐसे भीठे शब्दों का उपयोग करते हैं कि दूसरे पर बरबस प्रभाव पड़ जाता है। एक बार हम शहर गये। घर का सौदा-मुलक और अन्य सामान खरीदने के बाद हमारे पास किराये के लिए पैसे भी न बचे। हम जब बस-भड़्डे पर आये, तो हमें एक परिचित सज्जन मिल गया। हमने उसे अपनी मुश्किल बताई और किराये के लिए पैसे उधार मांगे, पर उसने हमें ऐसे हमदर्दी-भरे शब्दों में कहा कि हम पर अपने-आप ही प्रभाव पड़ गया, "देखो सरदार जी ! मुझसे उधार लिए पैसे आपको वापस करने पड़ेंगे, पर अगर आप आज बिना टिकट ही चले जाएं, तो क्या हर्ज है...आपके पैसे बच जायेंगे।...यहाँ कौन-सा कोई पूछता है...अगर कोई चेकर सवार हो जाये, तो वह कौन-सा बस बेक करता है...कंडक्टर से दस रुपये लेकर ठेके में जा घुसता है...मैं हर रोज ही बिना टिकट के जाता हूँ।"

हमने उसकी सलाह मान ली और बिना टिकट के ही साफर करने के लिए जाकर बस की सीट पर बिराजमान हो गये। बस चलने को अभी दस मिनट ही बीते थे कि चेकर साहब बस में आ घमके। चेकर को देखते ही हमारे शीश-हवास उड़ गये। हमने बहुतरे बहाने बनाये कि हमारा टिकट खो गया है, पर सच तो सही परदे फाड़कर भी बाहर आ जाता है। उन्होंने टिकट के नम्बरो का हिसाब लगा लिया और हमें किसी से मांगकर जुर्माना चुकाना पड़ा और शर्मिन्दा अलग होना पड़ा।

इसी प्रकार एक बार हमें गांव में एक बरात के साथ जाने का अवसर मिला। ड्यूटी पर रहने के कारण हमारे नये सिलाये कपड़े मँले हो गये। पर हमने मँले कपड़े पहनकर जाने का निश्चय कर लिया था कि हमारे पड़ोस से एक स्त्री बायी, जो मेरी दादी के समान थी। कहने लगी, "अरे चंद सिंह ! यह कपड़े पहनकर तू बरात के साथ जाता हुआ अच्छा लगेगा।" "लोग मजाक करेंगे" अगर मेरी माने, तो इनको धो डाल "सुबह बरात पर जाने से पहले यह सूख जायेंगे।"

बूढ़ी पड़ोसिन की सलाह मानकर हमने कपड़े धो दिये, पर अगले दिन बारह बजे से पहले कपड़ों ने सूखने का नाम न लिया, और हम हमदर्द पड़ोसिन की सलाह मानकर बारात के साथ जाने से ही रह गये।

इसी प्रकार कई सलाहकार किसी को बीमार देखकर अपने इलाज बताने लगते हैं, जिसका प्रभाव उल्टा ही पड़ता है। पर बाद में कुछ नहीं किया जा सकता, क्योंकि सलाहकार तो अपना तीर ठिकाने पर मारकर इधर-उधर हो गया होता है। इस प्रकार कई अन्य छोटी-बड़ी घटनाएं मेरे अनुभव में आयी हैं। इसलिए आप सबको कहता हूं कि जरा बचकर रहना इन हमदर्द सलाहकारों से, क्योंकि इनका डसा हुआ कभी भी ठीक नहीं होता।

वफादारी

बलवीर सिंह रैना



बात वास्तव में यों हुई कि जैसे ही मेरी पत्नी ने गहरे धुप अंधेरे कमरे के बल्ब का स्विच आन किया, उसके गोरे-चिट्टे चमकते हुए चेहरे पर गुलाब की तरह खिली हुई खुशी के बल्ब का स्विच ऑफ हो गया। सही अर्थों में मैं इसे पयूज उड़ना कह सकता हूँ। मैं कमरे में पहले से ही मौजूद था, और वह अपने प्रेमी के साथ मेरे सामने खड़ी थी।

विजली के प्रकाश में जैसे ही मेरा चेहरा उनको प्रत्यक्ष नजर आया, उसके प्रेमी ने उसकी कमर के गिर्द लपेटी अपनी बांह झटककर खींच ली, जैसे विजली का करंट लग गया हो।

फिजिक्स का प्रोफेसर होने के कारण मैं प्रायः क्लास में लेक्चर देता रहता था कि विजली के पोजिटिव और नेगेटिव चार्ज एक-दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं, जैसे चुम्बक के विरोधी ध्रुव एक-दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं और अपना वाग को रोचक बनाने के लिए मैं साथ ही औरत-मर्द को भी चुम्बक के दो विरोधी ध्रुवों की तरह उदाहरण के रूप में घसीट देता था, और यह उदाहरण कालेज के नवयुवकों के लिए बड़ा स्पष्ट और दिलचस्प होता था।

लेकिन आज मैंने अपनी आंखों के सामने ही एक अजीब कौतुक देखा था, जैसे कि मेरी पत्नी के प्रेमी का मेरी पत्नी से झटककर दूर हो जाना! मुझे दुख हुआ कि वर्षों में मैं जो उदाहरण अपने विद्यार्थियों को देता आ रहा था, आज वह गलत साबित हो गया था और एक सच्चा विज्ञान-प्राध्यापक होने के नाते मुझे अपनी पत्नी के प्रेमी पर बहुत गुस्सा आया, कि उसने मेरे ही सामने पूरी यूनिवर्सिटी में चर्चित मेरे इस उदाहरण की

घग्जिया उड़ाने की हिम्मत की थी। वास्तव में गुस्सा आना अनिवार्य था, क्योंकि मेरी पत्नी का प्रेमी कोई और नहीं, मेरे पास पढ़ने वाला मेरा ही एक विद्यार्थी था।

ऐसे होनहार पढ़ाकू और मेहनती विद्यार्थी से मुझे यह आशा नहीं थी कि वह प्रैक्टिकल परीक्षा के समय इतनी बड़ी गलती करेगा। मेरे ही सामने उनमें मेरे पढ़ाये हुए पाठ पर पानी फेर दिया था ! पानी क्या, मैं तो समझता हूँ, काली स्याही फेर दी थी सब किये-कियाये पर ! मैं उसको जितना मेज-सरार, होशियार और विकासशील समझता था, उतना वह साबित नहीं हुआ था। मैं उसमें बड़ी-बड़ी आशाएं-उम्मीदें लगाये बैठा था। अपनी पत्नी के साथ उसको पहली बार मैंने ही मिलाया था।

मैंने ही उसे एक अच्छे दोस्त की तरह समझाया था कि एक बवारी लडकी के बजाय एक विवाहिता स्त्री किसी बवारे नौजवान के लिए ज्यादा अच्छी बात साबित हो सकती है, क्योंकि वह तजुबेकार होती है, और दोनों में से एक प्राणी का अनुभवही होना दूसरे के ताजा अनुभवों में चार बाद लगा देता है। मुझे कुछ हद तक खुशी भी हुई कि एक सहृदय और आज्ञाकारी विद्यार्थी होने का सबूत देते हुए वह मेरे दिए मुझाव पर कार्य कर रहा था। यद्यपि इस काम के लिए उसने मेरी पत्नी ही चुनी थी, तथापि अन्य किसी की पत्नी वह चुन भी कैसे सकता था ? मैंने अपनी पत्नी के साथ अकेले मिलने के लिए उसे भरपूर अवसर दिए थे।

और तो सब ठीक था, परन्तु मुझे एक बात की समझ नहीं आ रही थी कि मेरी पत्नी मुझसे इतनी सहमी हुई क्यों थी ? मैं तो उनको गुस्से से घूर नहीं रहा था। मेरा चेहरा तो बड़ा सहज-स्वाभाविक था, जैसे कुछ हुआ ही नहीं है जबकि वे दोनों मेरे सामने इस प्रकार खड़े थे, जैसे कोई बहुत बड़ा गुनाह करते हुए रथे हाथों पकड़े गये हो। अजीब बात थी। डरना तो वास्तव में मुझे चाहिए था, क्योंकि कल को मेरा विद्यार्थी सारी यूनिवर्सिटी में मेरी मर्दानगी का भांडा फोड़ कर सकता था, लेकिन फिर भी वह डर रहे थे, और मुझे कोई डर नहीं था। कहने की जरूरत नहीं कि मेरी पत्नी बड़ी वफादार थी।

यों तो अब तक आप मेरे बारे में ठीक प्रकार से समझ गये होंगे। फिर

मैं जब नंगा ही हो गया हूँ, तो बता दू कि मेरी भीतरी बिजली का पोजिटिव चार्ज छोटी उम्र से ही बिजनी के नेगेटिव चार्ज वाली वाहियों के सम्पर्क में लगातार रहने के कारण समाप्त हो चुका है। समझ गये हो न ? यों आपकी समझदारी पर मुझे पूरा भरोसा है।

आपको शायद मेरे साथ सहानुभूति न हो, लेकिन मेरी पत्नी के साथ अवश्य सहानुभूति हो गयी होगी। इसमें आपका कोई कुसूर नहीं। आपको सहानुभूति ही होनी चाहिए। किसी जमाने में मुझे भी लोगों की बेचारी दुखी पत्नियों के साथ बड़ी सहानुभूति हुआ करती थी, और मैं उनकी बह ख़ुशियाँ और इच्छाएँ पूरी करने का भरसक प्रयत्न करता रहता था, जिससे वे प्रायः वंचित ही रह जाया करती थी।

“और आज आपको मेरी पत्नी के साथ सहानुभूति है। ईश्वर न करे, कल किसी को आपकी पत्नी से सहानुभूति हो जायें। खैर...”

“हाँ, तो मैं बता रहा था कि मेरी पत्नी अपने प्रेमी समेत मुझसे बहुत सहमी हुई थी। वास्तव में मेरी पत्नी अपने चेहरे पर भय की मुद्राएं उभारकर मेरे विद्यार्थी के सामने मेरी मर्दानगी का दम भरना चाहती थी। जबकि मैं अपने चेहरे की स्वाभाविकता पर गुस्से का मुखौटा चढ़ाने में सफल नहीं हो पा रहा था। मैं अपनी पत्नी के इस उपकार तले दबा जा रहा था, और किसी भी प्रकार इसका बदला अभी उसे लौटाना चाहता था।

सहसा, मैं अपनी कुर्सी से उठा। बल्ब का स्विच आफ किया और उन दोनों को अंधेरे कमरे में अकेला छोड़कर कमरे में से बाहर चला गया।

मेरे इस प्रकार चले जाने पर बुरा नहीं मानना ! मैं एक वफादार पत्नी का वफादार पति हूँ।

सींगों वाला गधा

डा० मोनोजीत



बात बड़ी अजीब-सी हो गयी थी। रामू कुम्हार की गधी को प्रसूत हो गया था। गधियों को प्रसूत होता ही रहता है, पर इस गधी ने जिस बच्चे को जन्म दिया था, उसने पूरी गधा जाति के नाम को चार चांद लगा दिये थे—उस बच्चे के सिर पर सींग थे।

जब गधों को इस बात का पता चला, उनमें खुशी की लहर दौड़ गयी, क्योंकि इन गधों के बच्चे के सिर पर भींग थे, और बाकी गधें सींग न होने के कारण बेवकूफ भ्रमज्ञे जाते थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि यह बच्चा बड़ा होकर जरूर कोई नेता, फिलासफर, वैज्ञानिक या सैनिक जनरल बनेगा। इसलिए वह सारे एक 'डिपूटेशन' लेकर रामू कुम्हार के पास पहुंचे, और उसे कहा कि वह इस बच्चे के पालन-पोषण पर पूरा-पूरा ध्यान रखे और इसे सामान्य गधों की तरह न समझे।

यह खबर धीरे-धीरे रामू के रिश्तेदारों में फैल गयी। जिसको भी पता चला, वह पूरे का पूरा परिवार लेकर गधे के नवजात बच्चे के दर्शन करने को जाता। रामू की बेचारी बीवी को उनकी चाय बनाने से ही फुरसत न मिलती।

रिश्तेदारों से इस बात की भनक आम जनता को पड़ गयी, बस, फिर क्या था, अब तो रामू के घर के बाहर चौबीस घंटे एक प्रकार का मेला लगा रहता। क्या नजदीक, क्या दूर के शहरों-गांवों में से लोग पैदल, साइकिलों, कारों, मोटर-साइकिलों, स्कूटर, और टैंक्सियों पर सवार होकर आते। चूंकि रामू के घर तक कोई सड़क नहीं थी, इसलिए उनको अपनी कारें, टैंक्सियां, मोटर-साइकिलें आदि गांव से बाहर ही

खड़ी करनी पड़ती। कई-कई जिज्ञासु रात के लिए ठहर भी जाते, जिससे गांव में खाने-पीने और रहने के प्रबंध की मुश्किलें पैदा होने लगी।

उस क्षेत्र के नेता को जब इस बात का पता चला, वह पदयात्रा करके इस विचित्र गधे के बच्चे के दर्शन करने के लिए आया। वहां विशेष जनसमूह को सम्बोधित करते हुए उसने सरकार से जोरदार शब्दों में माग की कि वह जनता की मुश्किलों को देखते हुए इस गांव की सड़कों के जरिये बड़े-बड़े शहरों के साथ जोड़े, और वहां से सीधी बसें इस गांव के लिए चलाये। साथ ही खाने-पीने और ठहरने के प्रबंध की मुश्किलों को देखते हुए सरकार को चाहिए कि सस्ते दामों पर जनता होटल चलाये। उसने यह भी कहा कि विधानसभा में भी वह यह प्रश्न उठायेगा।

वहां बैठे हुए कुछ सेठ किस्म के लोगों ने नंगा जी की कृपा प्राप्त करने के लिए उसी समय स्टेज से ऐलान कर दिया कि वह लोगों की भलाई के लिए मुफ्त लंगर चलायेंगे। एक अन्य नेता ने स्टेज से कहा कि सारे काम सरकार पर ही नहीं ढाल देने चाहिए, कुछ खुद भी करना चाहिए। इसलिए जल्दी ही यहां एक मराया बना लेनी चाहिए। आज अगर यहां सींगों वाला गधा जन्म ले सकता है, तो कल को बुतिया के पेट से शेर का बच्चा भी जन्म ले सकता है, उस समय हम क्या करेंगे? इस सामूहिक उद्यम का आरंभ उसने स्वयं एक हजार एक रुपया देकर किया और उसके बाद न जाने कितने ही हजार रुपये पलक पलक जमा हो गये। कई महाशयों ने यह भी कहा कि यह हमारे देवबामियों के लिए लज्जा की बात है कि इस अद्भुत गधे का स्वामी राम...नहीं, श्री रामदास दरिद्रावस्था में रहे। उसके लिए भी एक पक्के मकान की व्यवस्था होनी चाहिए। इस सामूहिक उद्यम के लिए भी काफी माया इकट्ठी हो गयी, जिसका हिसाब-किताब कभी किसी को पता न लग सका।

एक दिन एक बहुत बड़े अखबार 'लोक-संग्राम' का संवाददाता भी आ गया। बड़ी अजीब बातें कर रहा था वह। कभी किसी को पूछता कि कभी पहले इस गांव में इस प्रकार हुआ है? कभी किसी को पूछता कि गधे कभी बारहसिंगे के साथ तो नहीं देखी गयी? इन बच्चे का महान्

सींगों वाला गधा

डा० मोनोजीत



बात बड़ी अजीब-सी हो गयी थी। रामू कुम्हार की गधे को प्रसूत हो गया था। गधियों को प्रसूत होता ही रहता है, पर इस गधे ने जिस बच्चे को जन्म दिया था, उसने पूरी गधा जाति के नाम को चार चांद लगा दिये थे—उस बच्चे के सिर पर सींग थे।

जब गधे को इस बात का पता चला, उनमें खुशी की लहर दौड़ गयी, क्योंकि इस गधे के बच्चे के सिर पर सींग थे, और बाकी गधे सींग न होने के कारण बेवकूफ समझे जाते थे। इसलिए उन्होंने सोचा कि यह बच्चा बड़ा होकर जरूर कोई नेता, फिलासफर, वैज्ञानिक या सैनिक जनरल बनेगा। इसलिए वह मारे एक 'डेपूटेशन' लेकर रामू कुम्हार के पास पहुँचे, और उसे कहा कि वह इस बच्चे के पालन-पोषण पर पूरा-पूरा ध्यान रहे और इसे सामान्य गधे की तरह न समझे।

यह खबर धीरे-धीरे रामू के रिश्तेदारों में फैल गयी। जिसको भी पता चला, वह पूरे का पूरा परिवार लेकर गधे के नवजात बच्चे के दर्शन करने की जाता। रामू की बेचारी बीबी को उनकी चाय बनाने में ही फुरसत न मिलती।

रिश्तेदारों से इस बात की भनक आम जनता को पड़ गयी, बस, फिर क्या था, अब तो रामू के घर के बाहर चौबीस घंटे एक प्रकार का मेला लगा रहता। क्या नजदीक, क्या दूर के शहरों-गांवों में से लोग पैदल, साइकिलों, कारों, मोटर-साइकिलों, स्कूटर, और टैंक्सियों पर सवार होकर आते। चूँकि रामू के घर तक कोई सड़क नहीं थी, इसलिए उनको अपनी कारें, टैंक्सियाँ, मोटर-साइकिलें आदि गाव से बाहर ही

खड़ी करनी पड़ती। कई-कई जिज्ञासु रात के लिए ठहर भी जाते, जिससे गांव में खाने-पीने और रहने के प्रबंध की मुश्किलें पैदा होने लगीं।

उस क्षेत्र के नेता को जब इस बात का पता चला, वह पदयात्रा करके इस विचित्र गधे के बच्चे के दर्शन करने के लिए आया। वहां विशेष जनसमूह को सम्बोधित करते हुए उसने सरकार से जोरदार शब्दों में मांग की कि वह जनता की मुश्किलों को देखते हुए इस गांव को सड़कों के जरिये बड़े-बड़े शहरों के साथ जोड़े, और वहां से सीधी बसें इस गांव के लिए चलाये। साथ ही खाने-पीने और ठहरने के प्रबंध की मुश्किलों को देखते हुए सरकार को चाहिए कि सस्ते दामों पर जनता होटल चलाये। उसने यह भी कहा कि विधानसभा में भी वह यह प्रश्न उठायेगा।

वहां बैठे हुए कुछ सेठ किस्म के लोगों ने नेता जी की कृपा प्राप्त करने के लिए उसी समय स्टेज से ऐलान कर दिया कि वह लोगों की भलाई के लिए मुफ्त लंगर चलायेंगे। एक अन्य नेता ने स्टेज से कहा कि सारे काम सरकार पर ही नहीं ढाल दें चाहिए, कुछ खुद भी करना चाहिए। इसलिए जल्दी ही यहां एक मराया बना लेनी चाहिए। आज अगर यहां सींगों वाला गघ्रा जन्म ले सकता है, तो कल को बुतिया के पेट से शेर का बच्चा भी जन्म ले सकता है, उस समय हम क्या करेंगे? इस सामूहिक उद्यम का आरंभ उसने स्वयं एक हजार एक रुपया देकर किया और उसके बाद न जाने कितने ही हजार रुपये पलक झपकते जमा हो गये। कई महाशयों ने यह भी कहा कि यह हमारे देशवासियों के लिए लज्जा की बात है कि इस अद्भुत गधे का स्वामी राम...नही, श्री रामदास इरिद्रावन्धा में रहे। उसके लिए भी एक पक्के मकान की व्यवस्था होनी चाहिए। इस सामूहिक उद्यम के लिए भी काफी माया इकट्ठी हो गयी, जिसका हिसाब-किताब कभी किसी को पता न लग सका।

एक दिन एक बहुत बड़े अव्वार 'जोक-सग्राम' का संवाददाता भी आ गया। बड़ी अजीब बातें कर रहा था वह। कभी किसी को पूछता कि कभी पहले इस गांव में इस प्रकार हुआ है? कभी किसी को पूछता कि कभी कभी बारहसिमे के साथ तो नहीं देखी गयी? इस बच्चे का महान्

बाप कहा है ? मैं उसका इंटरव्यू लेना चाहता हूँ। लोगों ने उससे निवेदन किया कि गधों के बाप का भला कौन खयाल रखता है, पर उसने कहा, "इसका मतलब यह हुआ कि वह गधों का बारा था ? उसका चाल-चलान ठीक नहीं था ?"

लोग भला क्या कहते, पर अपनी डायरी में कुछ लिखता हुआ वह बड़बड़ाया, "भई, हैरानी की बात है कि ऐसे सूज केरेक्टर वाली गधों ने हम विश्वव्याप्ति पैदा करने वाले सुपुत्र को जन्म दिया है।"

लोक अभी भी घडाघड़ आ रहे थे। एक दिन बड़ी-बड़ी रंग-बिरंगी गाड़ियों पर सवार कुछ सफेद गोरे लोग आ गये। उनके पास कई बड़ी मशीनें और कैमरे थे। गांव के मारे बच्चे उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये। उन्होंने रामू को बहुत-से रुपये दिये और कहने लगे, "हम विदेश से आये हैं, और इस बच्चे के बारे में अपने देश के लोगों के लिए टी० वी० फिल्म बनाना चाहते हैं। रामू को भला क्या पता था कि टी० वी० क्या होता है ? पर वह रुपये देखकर चुप हो गया और वे आदमी कितनी देर तक उस बच्चे को बीच में रखकर टी० वी० फिल्म बनाते रहे। कई बार वे मँले-कुचैले बच्चों को भी उसमें शामिल कर लेते। उन्होंने पूरे गांव की, गांव के मुखिया की, रामू की, रामू की बीबी की, मतलब यह कि सभी की तसवीरें लीं। बच्चे के बाप के बारे में उन्होंने भी प्रश्न उठाया, पर उनको ज्यादा मुश्किल पेश न आयी, क्योंकि उन्होंने आपस में विचार-विमर्श करके निश्चय कर लिया कि क्यों न गांव के सारे गधे फिल्म में शामिल कर लिये जायें और इस महान् प्रसिद्धि के लिए गांव के हर गधे को 'बेनीफिट आफ डाउट' दिया जाये ?

उनको वापिस गये हुए कुछ ही दिन हुए थे कि देश के एक महान् ज्योतिषी जी पधारे। वह यह देखना चाहते थे कि कहीं यह सींगो वाला गधा देश के लिए हानिकारक तो नहीं सिद्ध होगा। जिस गांव में लोगों को अपनी प्रगती आयु का भी पता नहीं था, जिस गांव में लोग यह नहीं बता सकते थे कि उनके बच्चे कितने हैं, कितने हुए और कितने मर गये, उस गांव में भला उनको कौन इस गधे के बच्चे के जन्म का सही समय बताता ? भला लोगों को भी क्या पता था कि इस गधे के बच्चे को इतना प्रसिद्ध

जिनके प्रमोशन के चांस बढ गये थे, गधे की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे थे ।

उधर अच्छी देखरेख में पलने के कारण उम गधे के वच्चे का स्वास्थ्य बिगड़-रेकाई तोडता जा रहा था । वह अब शेर या वच्चा लगता था । जब वह शाम को सैर करने के लिए जंगल की ओर जाता, छोटे-मोटे जानवर तो एक ओर रहे, शेर, चीते, रीछ और भेड़िये आदि भी गह छोडकर भाग जाते ।

ज्यों-ज्यों वह बढा होने लगा, रामू की चिंता भी बढने लगी । अब गधे को देखने के लिए आने वाले लोगों का उत्साह भी कम हो गया था । कभी-कभी महीने में एकाध बार कोई घका-हारा आदमी आ जाता । रामू को लगा कि अब फिर उसे अपना पुराना घंघा ही आरंभ करना पड़ेगा, जिसके लिए उसे इस गधे की जरूरत पड़ेगी । यह गधा बीस गधों जितना काम करेगा, पर हाथ ! ये उसे ले जायेंगे ।

उसका दिल बैठ जाता । वह सोचता, आखिर इस गधे में कौन-सी खास बात है ? सींग उग आने से यह आदमी तो नहीं बन गया; आखिर है तो गधा ही ।

अचानक उसके दिल में एक खयाल आया, “क्यों न यह गधा लेकर वह कहीं भाग जाये ?” वह स्कीमे बनाने लगा ।

देश के अखबार एक दिन सुखियो से भर गये, “बहु अद्भुत गधा अपने मालिक समेत सापता हो गया है ।”

अखबारों में तरह-तरह के विचार प्रकट किये गये । कइयों ने यहां तक भी कह दिया कि गधे के सापता होने में किसी विदेशी सरकार का हाथ है । कइयों ने तो खुल्लम-खुल्ला सी० आई० ए० का नाम भी लिया । ‘एक पूंजीवादी देश कैसे बर्दाश्त कर सकता है कि ऐसी अद्भुत वस्तु एक अविकसित देश के पास हो !’

कइयों ने तो यह भी आरोप लगाया कि सरकार ने स्वयं ही किसी समझौते के अधीन यह गधा किसी बाहरी देश को बेच दिया है । सभी का मत एक विकसित देश की ओर इशारा करता था, जिसका राष्ट्रपति अभी-अभी राजधानी में आया हुआ था ।

विरोधी पार्टियों ने भी जी भरकर सरकार का विरोध किया। विरोधी दल के नेता ने प्रधानमंत्री से मांग की कि उनकी सरकार त्यागपत्र दे दे। जो सरकार एक गधे की रक्षा नहीं कर सकती, वह देश की व्यवस्था कैसे चलायेगी ?

प्रधानमंत्री ने भारी स्वर में अफसोस प्रकट करने के बाद कहा कि ऐसी कोई बात नहीं, जिसके लिए उनकी सरकार त्यागपत्र दे।

फिर भी उन्होंने विरोधी नेता का मुख बंद करने के लिए ऐलान किया कि उनकी सरकार जल्दी ही एक कमीशन बैठायेगी, जो इस मामले को पड़ताल करेगा।

“जो भी इस मामले में दोषी पाया गया,” उन्होंने कहा, “चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो, उसे कभी भी माफ नहीं किया जायेगा, सख्त सजा दी जायेगी।”

जिनके प्रमोशन के चांस बढ गये थे, गधे की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर रहे थे ।

उधर अच्छी देखरेख में पलने के कारण उस गधे के वच्चे का स्वास्थ्य विश्व-रेकार्ड तोड़ता जा रहा था । वह अब शेर का वच्चा लगता था । जब वह शाम को सैर करने के लिए जंगल की ओर जाता, छोटे-मोटे जानवर तो एक ओर रहे, शेर, चीते, रीछ और भेड़िये आदि भी राह छोड़कर भाग जाते ।

ज्यो-ज्यो वह बढा होने लगा, रामू की चिंता भी बढने लगी । अब गधे को देखने के लिए आने वाले लोगों का उत्साह भी कम हो गया था । कभी-कभी महीने में एकाध बार कोई थका-हारा आदमी आ जाता । रामू को लगा कि अब फिर उसे अपना पुराना घंघा ही आरम्भ करना पड़ेगा, जिसके लिए उसे इस गधे की जरूरत पड़ेगी । यह गधा बीस गधों जितना काम करेगा, पर हाथ ! ये उसे ले जायेंगे ।

उसका दिल बैठ जाता । वह सोचता, आखिर इस गधे में कौन-सी खास बात है ? सींग उग आने से यह आदमी तो नहीं बन गया; आखिर है तो गधा ही ।

अचानक उसके दिल में एक खयाल आया, “क्यों न यह गधा लेकर वह कहीं भाग जाये ?” वह स्कीमें बनाने लगा ।

देश के अखबार एक दिन सुखियो से भर गये, “वह अद्भुत गधा अपने मालिक समेत लापता हो गया है ।”

अखबारों में तरह-तरह के विचार प्रकट किये गये । कइयों ने यहाँ तक भी कह दिया कि गधे के लापता होने में किमी विदेशी सरकार का हाथ है । कइयों ने तो खुल्लम-खुल्ला सी० आई० ए० का नाम भी लिया । ‘एक पूँजीवादी देश कैसे बर्दाश्त कर सकता है कि ऐसी अद्भुत वस्तु एक अविकसित देश के पास हो !’

कइयों ने तो यह भी आरोप लगाया कि सरकार ने स्वयं ही किसी समझौते के अधीन यह गधा किसी बाहरी देश को बेच दिया है । सभी का मत एक विकसित देश की ओर इशारा करता था, जिसका राष्ट्रपति अभी-अभी राजधानी में आया हुआ था ।

विरोधी पार्टियों ने भी जी भरकर सरकार का विरोध किया। विरोधी दल के नेता ने प्रधानमंत्री से मांग की कि उनकी सरकार त्यागपत्र दे दे। जो सरकार एक गधे की रक्षा नहीं कर सकती, वह देश की व्यवस्था कैसे चलायेगी ?

प्रधानमंत्री ने भारी-भरकबंद स्वर में अफसोस प्रकट करने के बाद कहा कि ऐसी कोई बात नहीं, जिसके लिए उनकी सरकार त्यागपत्र दे।

फिर भी उन्होंने विरोधी नेता का मुख बंद करने के लिए ऐलान किया कि उनकी सरकार जल्दी ही एक कमीशन बैठायेगी, जो इस मामले की पड़ताल करेगा।

“जो भी इस मामले में दोषी पाया गया,” उन्होंने कहा, “चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो, उसे कभी भी माफ नहीं किया जायेगा, सख्त सजा दी जायेगी।”

कैनवस का भूत

डा० नरेश



खाली कैनवस के सामने बैठते ही मुझे लगा कि मेरी हथेली पर पड़े हुए रंग आपस में गड़मड़ हो गये हैं। ठीक उसी प्रकार, जैसे कैनवस तक पहुँचते ही मेरी पत्नी की नजरों में बेवसी और मेरी बेकारी गड़मड़ हो गयी थी। उसे पता था कि मैं चाय पिये बिना काम नहीं कर सकता, लेकिन वह कर भी क्या सकती थी? बच्चे दिन निकल जाने पर भी सोये पड़े थे। उनको जगाया नहीं गया था। सिर्फ़ इसलिये कि जगेगे, तो चाय मांगेंगे, और आज घर में न चीनी थी और न चाय की पत्ती।

आधिर मेरे हाथों में ब्रूश चलने लगा। ब्रूश रंगों के साथ कैनवस का भूखा पेट भरने लगा। पहले साल रंग की एक रेखा कैनवस के बस पर उभरी। वही रेखा, जो मैंने सुहागरात के रोमांटिक माहौल में अपनी पत्नी की माग में भरी थी। मैंने विवाह करवाने से पहले भी उसे कहा था कि शादी का रिश्ता प्यार की अजमत की फीका कर देगा। उसे बहुत समझाया कि बिना शादी किये भी हम दोनों दोस्तों की तरह रह सकते हैं—शायद सुखी भी। मेरी दलील थी कि सेक्स ही जिन्दगी नहीं है, और सेक्स पर आधारित रिश्ते ही रिश्ते नहीं हैं, पर उसने मेरी एक न सुनी। उसकी दलील मेरी भावनाओं से कहीं अधिक प्रबल थी।

“शादी मन की भूख न सही, तन की भूख तो मिटाती है।”

मैंने कहा था कि “यह बात अपने-आप में ही बहुत बड़ी बात है कि हम एक-दूसरे को प्यार करते हैं।”

पर उसकी दलील थी कि “मन के सम्बन्ध को शरीरों की लालसा का मोहताब क्यों रहने दिया जाये?”

मैं जानता था कि मैं एक आर्टिस्ट हूँ—प्रोफेशनल आर्टिस्ट नहीं, और मेरे लिए आर्ट को प्रोफेशन बनाकर जिन्दा रहना कठिन ही नहीं, असम्भव भी था पर मैं चाहते हुए भी अन्य कोई काम करने में असमर्थ था।

पर उसको मेरा मन भी चाहिए था, और मेरा तन भी। उस समय उसके सामने यह हकीकत नहीं खुली थी कि पेट की आग को प्यार, भरपूर प्यार के साथ भी नहीं बुझाया जा सकता और पेट की जरूरतें पूरी करने के लिए आर्ट नहीं, जीने की आर्ट की जरूरत होती है, और मैं इस पक्ष की ओर से बिल्कुल कोरा था।

ब्रुश ने किसी ओर से काला रंग शुरू कर दिया था। कैनवास पर एक पतली-सी काली रेखा चमक उठी। ठीक वैसी रेखा, जो कुछ एक हसीन रातों के बाद हम दोनों के बीच उभर आयी थी। वह ठीक कहती थी, “तन की भूख को तन से बुझाया जा सकता है, मन से नहीं!” और इसी का परिणाम था कि आधा पेट भरते हुए भी हम दो बच्चों के माता-पिता बन गये थे।

ब्रुश कैनवास पर दौड़ता जा रहा था। रंग पर रंग चढ़ रहा था। अचानक दरवाजा खुला। मेरी परनी ने कमरे में प्रवेश किया। वह पड़ोस के किसी घर से चाय की पत्ती और चीनी उधार ले आयी थी। हाँ, उधार, और यह उधार कभी वापस नहीं चुकाया जाता था। पर उसे तो चाय की समस्या हल करनी थी, और वह किसी भी प्रकार हल कर ली थी। चाय, जिसकी उसके पति को जरूरत थी, उसके बच्चों को भी जरूरत थी। बच्चे जाग चुके थे। उनका कौओं जैसा शोर मेरे कमरे तक पहुँच चुका था।

लेकिन कैनवास पर नजर पड़ते ही वह चौंक पड़ी। उसके हाथ से प्याली छूटकर फर्श पर गिर पड़ी चाय की बदनसीब प्याली, जिसको वह स्वयं न पीकर मेरे लिए ले आयी थी। वह पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी कैनवास की ओर देख रही थी। कुछ क्षणों की बोझिल खामोशी के बाद वह सहमकर पूछने लगी, “यह भूत क्यों बनाया है कैनवास पर?”

मैंने गौर से कैनवास की ओर देखा। मेरी उंगलियों ने सचमुच ही किसी भूत का सृजन कर दिया था। भूत, जिसको बेचारगी का भूत कहा जा सकता था। भूत, जो दांत पीसता हुआ मेरी ओर देखे जा रहा था,

लेकिन मेरी पत्नी की परेशानी मेरे लिए असहनीय थी । चेहरे पर जबर-दस्ती मुस्कराहट लाते हुए मैंने कहा, “तुम डर गयी हो ?” यह तो कैनबस का भूत है ।”

और एक क्षण के लिए अपनी कमर के गिर्द मेरी बांहों का आलिगन महसूस करके वह गुमसुम-सी हो गई ।

मां ! पुलिस वाले के घर मत व्याहना

नूर संतोखपुरी



मैं बड़े मजे से सोया हुआ एक बहुत ही बढ़िया सपना देख रहा था कि अचानक मेरी पत्नी ने मुझे झंझोड़कर जगा दिया। मैंने आँखें मलने हुए पूछा, "क्या सुसीबत आ गई है?"

"भगवान के लिए दौड़कर जाओ। बेचारे बिशन को जाकर छुड़ाओ।" मेरी पत्नी धबराई हुई बोली।

"उसे सुबह-सुबह किसने पकड़ लिया है?" मैं अभी भी बिस्तर में लेटा हुआ करवटें बदले जा रहा था।

"एक ही तो है, जिसके हाथ वह अक्सर आ आता है। उसकी मोटी पत्नी कुलच्छनी उसको बेलन से पीटे जा रही है। कोई डर के मारे करीब नहीं जाता। बेचारे का बहुत बुरा हाल हो रहा है। इस मरजानी मोटी को जरा भी तरस नहीं आता बिशन को पीटते हुए। बाकी पत्नियों भी जरा संभलकर पीटती हैं अपने पति-परमेश्वर को, लेकिन यह कमबख्त... उठो भी नहीं तो फिर देखना..." मेरी पत्नी ने मुझे बांह पकड़कर यों खड़ा कर दिया, जैसे दीवार के साथ चारपाई खड़ी करते हैं।

मैंने झटपट दरों में खप्पल पहनी और बिशन के घर में जा घुसा। जाकर देखा, तो उसकी मोटी पत्नी ने उसको बालों से पकड़ रखा था और बेलन से उसकी मरम्मत कर रही थी।

"क्या बात हो गई भाभी? सुबह-सुबह हाथ गर्म करने लगी हो।" मैं थोड़ा-सा उसके करीब पहुंच गया। मुझे देखकर उसने बिशन को छोड़ दिया। वह भागकर मेरे पास आकर खड़ा हुआ। बेचारे की सांस फूल रही थी। यों भी प० हड्डियों का पिंजर ही तो था। पत्नी को मार खाकर

किसी ऐरे-गैरे के बस की बात नहीं थी।
तो ही बेलन की मार सहन की जा सकती है।

पूछ इस भाड़ में जाने वाले को। यह सुबह-सुबह सोये हुए किस
सिमरो का स्मरण कर रहा था ?" उसकी पत्नी ने आँखों को और लाल
करते हुए कहा।

"क्या पतलब ?" मैंने बिशन की ओर देखा।

"मुझे तो खुद नहीं मालूम। मैं तो सोया हुआ था कि यह मुझे बालों
से पकड़कर पीटने लगी। मुझे कारण पूछने का मौका ही नहीं दिया।"
बिशन अभी भी हाँफ-हाँफकर बातें कर रहा था।

"मैं बताती हूँ अच्छी तरह से !" उसकी घरवाली हमारे निकट आते
हुए बोली। बिशन खिसककर थोड़ा-सा उससे और दूर हो गया।

"अगर यह भरजाना सोये हुए बेगानी औरतों के नाम जपता रहता है,
तो दिन में बाहर न जाने क्या-क्या कुकर्म करता होगा !" उसकी पत्नी का
गुस्सा अभी भी उबल रहा था। अगर मैं उस समय वहाँ न होता, तो उसने
बिशन को फिर पकड़ लेना था। मैंने सोचा, इस कुलच्छन के साथ बेकार
में किसलिए माया-पच्ची की जाये ! मैं बिशन की बांह पकड़कर बाहरी
दरवाजे की ओर चल दिया। वहलीज लांपते समय मैंने पीछे मुड़कर देखा
तो बिशन की पत्नी अभी भी माथे पर बल डाले खड़ी थी।

एक सुरक्षित-सी जगह देखकर हम दोनों बैठ गये।

"तुझे आज फिर यह किसलिए पीटने लगी थी ?" मैंने बिशन से
पूछा।

"नूर, तुझे भी पता है। जब पत्नी का मूढ़ पति को पीटने के लिए
उबल रहा हो, तो वह कोई नकोई बहाना ढूँढ ही लेती है। और साथ ही
इसने जब भी मुझे पीटा, कभी कारण नहीं बताया। अब तो रोज मार
खाने की बजाय—मैं कहीं दूख भरना चाहता हूँ। मुझसे अब इसकी
मारसेली नहीं जाती। अब मेरी हड्डियों में पहले जैसा रस नहीं रहा।"
बिशन बिसूरने लगा।

"कोई बात नहीं, फिर क्या हुआ ? तुझे किसी बेगानी औरत ने थोड़े

पीटा है। तेरी अपनी पत्नी ने पीटा है। न रो मेरे भाई। मैं तेरे दुःख को अच्छी तरह समझता हूँ।" मैं उसको चुप कराने की कोशिश करने लगा। बिशन चुप कर गया। मैं भी कुछ नहीं बोला। हम दोनों के बीच इस प्रकार खामोशी छा गयी, जैसे हम किसी का मातम मना रहे हों।

"वह किसी सिमरो के बारे में कह रही थी।" मैंने खामोशी भंग करते हुए कहा।

"हमारे भाग्य में यही लिखी हुई थी। इसके बिना तो हमने कभी किसी बिल्ली की तरफ आँखें भरकर नहीं देखा।" बिशन कहने लगा।

"इसका मतलब यह कि हर बार तुझे यह बहाने ढूँढ़कर पीटती है?"

"और क्या?"

"साले। तेरी किस्मत ही कसाई के बकरे जैसी है। कोई इसमें क्या कर सकता है?"

"रोज-रोज मार खाने से एक दिन सोये हुए का गला ही घोंट दे, अगर मैं इसे अच्छा नहीं लगता।" बिशन भावुक होकर बोला।

"अगर तू मर गया, तो वह अपना घस्का कैसे पूरा किया करेगी?"

"यही रोना तो मैंने विवाह से पहले बेबे के सामने रोया था कि भाई, मेरा यहां रिश्ता न करो। इसका बाप भी पुलिस में है, और इसके तीनों भाई भी। पुलिस वालों की थोड़ी-बहुत आदतें इसमें भी होंगी। पुलिस खानदान की सड़की के साथ इश्क करना भी बुरा... फिर इसकी तो सारी उन्न की मुलामी रहेगी। पर बेबे (माँ) कहने लगी, 'काका, पुलिस वालों के साथ रिश्तेदारी करनी अच्छी रहेगी। तेरे बापू और भाइयों को आये दिन पुलिस के साथ काम पड़ता रहता है। अगर तेरा रिश्ता पुलिस वालों के साथ हो जाये तो तुम आसानी से शराब, चरस और अफीम बेच सकते हो। फिर कोई परेशानी नहीं रहेगी।"

"बस नूर, बेबे के फंमाये हुए फंसे बैठे हैं, नहीं तो इस घुड़ल को कौन पूछता था?"

बिशन अब कुछ-कुछ हलका-फुलका महसूस कर रहा था। उसने अपना दुःख मेरे सामने प्रकट कर लिया था, लेकिन मैं अपना रोना उसके सामने अभी तक नहीं रो सका था। अपनी पत्नी का चेहरा आँखों के सामने

आते ही मैं एकदम उठ खड़ा हुआ। विशन मेरी ओर मुटुर-मुटुर देखने लगा।

“क्या बात है ? चल पड़ा है ?”

“हां यार मुझे अब जाने दे। इतनी देर न जाने कैसे मैंने घर से बाहर समय बिता लिया है ? पता नहीं, तेरी भाभी दरवाजे पर घोंटना लिये खड़ी होगी। मेरे ससुर ने दहेज में अन्य तो कोई चीज नहीं दी, केवल नीम का एक मजबूत घोटना उसने अपनी लड़की को जरूर दिया था।”

मैं इतना कहकर अपने घर की ओर चल दिया। घर को जाते हुए मैं डर रहा था—“हे ईश्वर तुम ही हमारे परदे ढंककर रखना।” इतने में यही आवाज कानी में पड़ी, “बस, यो समझ लो कि फिर तुम्हारा नूर मुबह नूर के सड़के तक घर से बाहर नहीं निकल पायेगा !”

लेखक-परिचय

प्यारा सिंह दाता : जन्म १५ जुलाई १९१० । पंजाबी के वयोवृद्ध और प्रमुख हास्य-व्यंग्य लेखक । कई पुस्तकें प्रकाशित । प्रमुख पुस्तकें हैं : नमक का पहाड़, नया रेडियो, आकाशवाणी, जिंदा शहीद । पंजाबी में एकमात्र हास्य-व्यंग्य पत्रिका 'नया साहित' के प्रकाशक एवं सम्पादक हैं । भाषा विभाग, पटियाला द्वारा एक बहुत् ग्रन्थ 'प्यारा सिंह दाता और उनका हास्य-व्यंग्य' हिन्दी में प्रकाशनाधीन है ।

डा० गुरनाम सिंह सीर : पंजाबी के प्रमुख व्यंग्यकार । नाटक, कविताएं भी लिखीं । अनेक पुस्तकें प्रकाशित । अपने प्रकार की अनूठी हास्य-व्यंग्य पुस्तक 'मुझे मुझसे बचाओ' अधिक चर्चित । पंजाबी पत्रिका 'अजीत' जालन्धर में एक हास्य कालम 'बाबा चण्डीगढ़' कई वर्षों से छप रहा है ।

सूबा सिंह (स्व०) : कविता, कहानियाँ, गद्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में खूब लिखा । प्रसिद्ध पुस्तकें हैं—हीर, अलौपि हो रहे चेटक, आग और पानी तथा जहरीले हासे ।

शेरजंग आंगली : यह इंग्लैंड से निकलने वाली एक पंजाबी पत्रिका के संपादक हैं और वही रहते हैं । इन्होंने राजनीतिक व्यंग्य अधिक लिखे हैं । चार पुस्तकें : शूरशूर, उस्ताद कलमतोड़, अलादीन गोरा जिन्न, तमाशा जरकी दा छप चुकी हैं ।

अनंत सिंह काबुली : पंजाबी पत्रिका 'मोहाली' के संपादक हैं । कई पुस्तकें छप चुकी हैं । प्रमुख है : उरला-यरला ।

~~बलीप सिंह~~ बलीप सिंह (स्व०) : कुछ समय पूर्व इनका देहान्त हो गया ।
 'मूल-रूप से नाटककार थे । लगभग साठ पुस्तकें पंजाबी में लिखी ।

रामलाल नामबी : उर्दू, हिन्दी और पंजाबी तीन भाषाओं में हास्य-
 व्यंग्य रचनाएं लिखते हैं । तीनों भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं में इनकी
 रचनाएं छपी हैं । कई पुस्तकें प्रकाशित ।

के० एल० गर्ग : जन्म—१३ अप्रैल १९४३; शिक्षा—एम० ए०
 (हिन्दी और अंग्रेजी) । तीन कहानी संकलन—वोट ६६, आग के दायरे,
 तलब दा रिश्ता; दो हास्य-व्यंग्य-संग्रह—देख कबीरा हंसा, खरियां-
 खोटियां; एक उपन्यास—दरअसल प्रकाशित ।

जगदीश प्रसाद कौशिक : डेढ़ हजारके लगभग लेख, कविताएं, व्यंग्य
 नाटक आदि लिख चुके हैं । पंजाबी में हास्य-व्यंग्य की एक पुस्तक
 'मुखौटे, छप चुकी है ।

बलीप सिंह भूपाल : हास्य-व्यंग्य, लेख और कविताएं लिखीं ।
 व्यवसाय—अध्यापन । कई पुस्तकें छप चुकी हैं । प्रमुख हैं—बाबे तारे,
 चार चक्क, ग्रहिणे सूरज, चुस्कियां, गजरेलियां, आकाशवाणियां ।

बलीप सिंह जुनेजा : जन्म—जनवरी १९४२; शिक्षा—एम० ए०,
 एम० एड० । प्रकाशित पुस्तकें—छिलतरी, अक्क दे फुल्ल, तजबीज
 प्रवान हो ।

जसवंत सिंह कंसबी : जन्म—१ नवम्बर १९३६; शिक्षा—एम. ए.,
 एम० एड० । व्यवसाय—अध्यापन । प्रकाशित पुस्तकें हैं—रीझा दे
 फुल्ल, विश्वास दे रंग, धुप्प ते तारे ।

निरंजन शर्मा सेखा : प्रमुख व्यंग्य लेखक । दो पुस्तकें—सुगंधिका
 और कच्च दे टुकड़े छप चुकी हैं ।

जगदीश सिंह : शिक्षा—एम. ए. (हिन्दी) । व्यवसाय—अध्यापन ।
 अनेक हास्य-व्यंग्य पंजाबी और हिन्दी की पत्रिकाओं में छप चुके हैं ।

डा० नरेश, डा० मोनोजीत कुलदीपसिंह धेतनपुरी, एम० के० राही
 फिरोजपुरी, लखतसिंह कोमल और यत्तवीर सिंह रेना : ये नई पीढ़ी के
 लेखक हैं जिनकी रचनाएं पंजाबी पत्र-पत्रिकाओं में लगातार छप रही हैं ।

थी मुरजीत

इस पुस्तक के संकलनकर्ता और संपादक हैं मुरजीत। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी में एम० ए० किया है और पिछले छब्बीस वर्षों से निरंतर उर्दू, फ़ारसी, और डोगरी से अनुवाद कर रहे हैं और मौलिक लेखन भी। उनकी सहस्रों मौलिक व अनूदित रचनाएं हिंदी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं—यया धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सारिका, नवनीत, कादम्बिनी, आजकल, नई कहानियां, कहानी, दैनिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, दैनिक दिबून, रविवार, नन्दन, पराग, सौटपोट, आदि में छप चुकी हैं। हिंदी में लगभग पचास पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन में आंगन, उर्दू की आखिरी किताब, बुत्ते की दुम, सितारे चहचहाते हैं, जमीन, चटकारे, गोरख-धंधा, राष्ट्रीय जूता, होशियार-खबरदार, शिकार-नामा, शिकार की रोमांचकारी कहानियां, आप से मिलिये, ऐवाने-गजल आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

सम्पर्क—सी-34, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली-15

फोन : 538533